जीवन सत्य की खोज

अनुक्रम

1. सत्य की खोज........................................................................................2
2. परमात्मा की अनुभूति.......................................................................16
3. जागरण के तीन सूत्र..........................................................................33

जीवन सत्य की खोज
पहला प्रवचन

सत्य की खोज

मेरे प्रिय आत्मन्!
सत्य की खोज के संबंध में थोड़ी सी बात आपसे कहना चाहूंगा।
सत्य की क्या परिभाषा है? आज तक कोई परिभाषा नहीं हो सकी है। भविष्य में भी नहीं हो सकेगी। सत्य को जाना तो जा सकता है, लेकिन कहा नहीं जा सकता। परिभाषाएं शब्दों में होती हैं और सत्य शब्दों में कभी भी नहीं होता।
लाओत्से ने आज से कोई तीन हजार वर्ष पहले एक छोटी सी किताब लिखी। उस किताब का नाम है ताओ तेह किंग। उस किताब की पहली पंक्ति में उसने लिखा हैः मैं सत्य कहने के लिए उत्सुक हुआ हूं, लेकिन सत्य नहीं कहा जा सकता है। और जो भी कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं होगा। फिर भी मैं लिख रहा हूं, लेकिन जो भी मेरी इस किताब को पढ़े, वह पहले यह बात ध्यान में रख ले कि जो भी लिखा, पढ़ा, कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं हो सकता।
बहुत अजीब सी बात से यह किताब शुरू होती है। और सत्य की दिशा में लिखी
गई किताब हो, और पहली बात यह कहे कि जो भी लिखा जा सकता है वह सत्य नहीं होगा, जो भी कहा जा सकता है वह सत्य नहीं होगा, फिर लिखा क्यों जाए? फिर कहा क्यों जाए? जो हम भी कहेंगे वह अगर सत्य नहीं होना है, तो हम कहें क्यों? लेकिन जिंदगी के रहस्यों में से एक बात यह है कि अगर मैं अपनी अंगुली उठाऊं और कहूं--वह रहा चांद! तो मेरी अंगुली चांद नहीं हो जाती है, लेकिन चांद की तरफ इशारा बन सकती है। अंगुली चांद नहीं है, लेकिन फिर भी चांद की तरफ इशारा बन सकती है। लेकिन कोई अगर मेरी अंगुली पकड़ ले और कहे कि मिल गया चांद, तो भूल हो जाएगी। अंगुली चांद नहीं है, लेकिन चांद की तरफ इशारा बन सकती है, और उनके लिए ही इशारा बन सकती है जो अंगुली को छोड़ दें और चांद को देखें। अंगुली को पकड़ लें, तो अंगुली इशारा न बनेगी, बाधा बन जाएगी।
शब्द सत्य नहीं है, न हो सकता है। लेकिन शब्द इशारा बन सकता है। लेकिन
उन लोगों के लिए, जो शब्द को पकड़ न लें। जो शब्द को पकड़ लें, उनके लिए शब्द इशारा नहीं बनता, सत्य और स्वयं के बीच दीवाल बन जाता है। और हम सारे लोगों को शब्द दीवाल बन गए हैं; हमने जितने शब्द पकड़ रखे हैं वे सभी दीवाल बन गए हैं। शब्द के पास कुछ भी नहीं है। जो भी मैं कहूंगा, अगर मेरे शब्द ही सुने, तो कुछ भी नहीं पहुंचेगा आप तक। लेकिन अगर शब्द इशारा बन जाएं और उस तरफ आंख उठ जाए जिस तरफ शब्द इंगित करते हैं... । और जिस तरफ शब्द इंगित करते हैं, वह बहुत दूर है। शब्द पृथ्वी के हैं और जिस तरफ इशारा करते हैं वह आकाश में है, फासला बहुत है। शब्द और सत्य के बीच बहुत फासला है।
लेकिन कोई व्यक्ति गीता पढ़ता है और गीता के शब्दों को कंठस्थ कर लेता
है और सोचता हैः मिल गया धर्म, जान लिया धर्म। कोई आदमी कुरान पढ़ता है और आयतें कंठस्थ कर लेता है और सोचता हैः जान लिया सत्य। सब शास्त्र हमारे हाथों में आकर, सत्य और हमारे बीच दीवाल बन गए। सब महापुरुष पकड़ लिए जाने के कारण इशारा नहीं रहे, पत्थर बन गए हैं। और ऐसी हालत हो गई है कि जिनसे हमने यात्रा की होती, उन्हें हमने रुकावट बना लिया है।
बुद्ध कहते थे, कुछ मित्र एक बार नदी पार किए एक नाव में बैठ कर। फिर
जब वे नदी पार कर गए, तो वे सोचने लगे कि जिस नाव में हमने नदी पार की है, उस नाव को हम छोड़ कैसे दें? इस नाव का तो हम पर बड़ा उपकार है। अगर यह नाव न होती तो हम नदी पार न कर पाते। तो उन्होंने नाव को अपने सिरों पर उठा लिया और बाजार में चले। लोग उनसे पूछने लगे, यह क्या कर रहे हो? हमने कभी लोगों को सिर पर नाव उठाए नहीं देखा।
तो उन लोगों ने कहा, इस नाव के द्वारा हम नदी पार हुए। अब हम नाव के प्रति इतने अकृतज्ञ नहीं हो सकते हैं कि उसे नदी में ही छोड़ दें नाव को! हम नाव को अपने सिर पर ले जाएंगे। अब हम इस नाव को सदा अपने सिर पर रखेंगे।
क्योंकि इस नाव ने हमें नदी पार करवा दी।

लोग कहने लगे, तुम पागल हो गए हो! नाव नदी पार करने के लिए है और फिर छोड़ देने के लिए है। और जो पागल नाव को सिर पर लेकर घूमेगा, उससे तो अच्छा था कि वह नदी ही पार न करता, कम से कम नाव की झंझट से तो बचता।
शास्त्र और शब्द भी इशारे हैं--किसी तरफ पार हो जाने के लिए। लेकिन उन इशारों को लोग सिर पर ले लेते हैं, फिर जिंदगी भर उन्हीं के नीचे दबते हैं और मर जाते हैं। और उसका कोई पता नहीं चलता, जिसके लिए इशारे थे।
इसीलिए दुनिया में हिंदू हो गए हैं, मुसलमान हो गए हैं, ईसाई हो गए हैं, जैन हो गए हैं, लेकिन सत्य के खोजी नहीं। हिंदू का क्या मतलब? हिंदू का मतलब है कि कुछ शास्त्रों को एक आदमी ने अपने सिर पर पकड़ रखा है और वह कहता है, यही सत्य है। मुसलमान का क्या मतलब है? मुसलमान का मतलब हैः किन्हीं दूसरे शास्त्रों को, किन्हीं दूसरे इशारों को उसने अपने सिर पर रख लिया है और वह कहता है, यही सत्य है। और सारी दुनिया में सारे लोग शास्त्रों को सिर पर लिए हुए खड़े हैं। अन्यथा आदमी आदमी है, न कोई हिंदू है, न कोई मुसलमान है। हिंदू और मुसलमान बनाने वाला शास्त्र है।
हिंदू और मुसलमान के बीच फासला क्या है? शब्दों का फासला है। उसने एक तरह के शब्द सीखे हैं और मैंने दूसरे तरह के शब्द सीखे हैं, तो मैं हिंदू हूं, वह मुसलमान है, तीसरा आदमी ईसाई है। फर्क क्या है तीन आदमियों के बीच? तीन तरह के शब्दों की परंपराओं के अतिरिक्त और कोई फर्क नहीं है। एक आदमी ने अल्लाह सीखा है तो वह मुसलमान है, एक ने राम सीखा है तो वह हिंदू है। फर्क क्या है दोनों के बीच? दो शब्दों का! और अल्लाह भी एक इशारा है और राम भी एक इशारा है। मजे की बात यह है! और जिसकी तरफ इशारा है, वह न अल्लाह है, न राम है। मोहम्मद भी एक अंगुली बता कर कहता है, वह रहा सत्य। इसकी अंगुली को जिसने पकड़ लिया है, वह मुसलमान है। और कृष्ण भी अंगुली उठा कर कहता है, वह रहा सत्य। इसकी अंगुली को जिसने पकड़ लिया, वह हिंदू है। और जिस तरफ ये अंगुलियां उठती हैं--अंगुलियां हजार हो सकती हैं, चांद एक है। लेकिन फिर अंगुलियों को पकड़ने वाले लोग लड़ते हैं।
दुनिया में सिर्फ आदमी है, न कोई हिंदू, न कोई मुसलमान। शास्त्रों का फासला है। और शास्त्र इशारे हैं। शास्त्र पकड़ने के लिए नहीं, छोड़ देने के लिए हैं। नाव सिर पर ढोने के लिए नहीं, यात्रा में सहयोगी बनने के लिए है। सब शब्द सहयोगी की तरह शुरू होते हैं और दुश्मन की तरह छाती पर बैठ जाते हैं। कोई सोचे कि हमारे बीच शब्दों के अतिरिक्त और कोई फासला है? दुनिया में जितने झगड़े हैं, शब्दों के अतिरिक्त झगड़े का और कोई कारण है? जितनी आइडियोलॉजीज हैं, ये क्या हैं?
आइडियोलॉजीज हजार हो सकती हैं, लाख हो सकती हैं, करोड़ हो सकती हैं। एक-
एक आदमी की एक-एक आइडियोलॉजी हो सकती है। जितने आदमी हैं, उतने विचार हो सकते हैं। लेकिन सत्य तो एक है। सत्य का अर्थ हैः जो है।
लेकिन जो है, दैट व्हिच इ.ज, उसको अगर जानना है, तो मुझे सारे शब्द छोड़ देने पड़ेंगे। तो उसे मैं बिना शब्दों को छोड़े कभी नहीं जान सकता हूं। सत्य को जानने की दिशा में पहला जो बड़ा काम है, वह शब्दों को, शास्त्रों को, संप्रदायों को, सिद्धांतों को छोड़ देना है। जो इन्हें जितने जोर से पकड़ेगा, उतना ही मुश्किल हो जाएगा उसे जानना, जो है।
सत्य की इसलिए कोई परिभाषा नहीं हो सकती, क्योंकि सभी परिभाषाएं शब्दों में होती हैं। हम नहीं होंगे, तो भी सत्य होगा; पृथ्वी पर मनुष्य नहीं था, तो भी सत्य था; शब्द नहीं था लेकिन तब, सत्य था। कल यह हो सकता है कि सारे मनुष्य खो जाएं, न हों, तो भी सत्य होगा। चांद था, जब इशारे करने वाले नहीं थे, तब भी; और इशारे करने वाले नहीं रह जाएंगे, तो भी चांद होगा। इशारों से चांद के होने का कोई भी अनिवार्य संबंध नहीं है। हां, चांद न हो तो इशारे नहीं किए जा सकते। लेकिन इशारे न हों तो चांद हो सकता है। सत्य था, सत्य है, सत्य रहेगा; हम हों, न हों, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। जो है, वह हमारे शब्दों से रूपांतरित नहीं हो जाता।
लेकिन हम अपने शब्दों के चश्मों से ही उसे देखना चाहते हैं। तब कठिनाई शुरू हो जाती है। हम सदा अपनी दृष्टि से देखना चाहते हैं। और तब हमारी दृष्टि सत्य को वैसा नहीं दिखने देती जैसा वह है, वैसा बना देती है

जैसा हम देखना चाहते हैं। यह हमारे खयाल में नहीं है कि जब तक हमारी कोई दृष्टि... और दृष्टि का मतलबः हमारे सीखे हुए शब्द। दृष्टि का और कोई मतलब नहीं है। दृष्टि का मतलब हैः हमारे सीखे हुए शब्द, हमारा सीखा हुआ ज्ञान, लर्निंग; वह जो हमने जान लिया है, जो हमने सुन लिया है, जो हमने पढ़ लिया है, वह हमारी दृष्टि को बनाता है। उस दृष्टि के माध्यम से जब हम देखने चलते हैं, तो सत्य सत्य नहीं रह जाता, बीच में एक परदा है और वह परदा विकृत कर देता है।
मैंने सुना है, एक गरीब आदमी एक गाय खरीद लाया था। लेकिन गाय थी एक सम्राट के घर की। गरीब आदमी की बड़े दिनों से इच्छा थी कि वह गाय खरीदे, और कोई बहुत बढ़िया गाय खरीदे। बहुत मुश्किल से रुपये इकट्ठे करके गाय खरीदी। लेकिन उसे पता नहीं था कि राजा के घर की गाय गरीब आदमी के घर में कैसे रह सकती है? गाय तो ले आया, लेकिन गाय ने उस गरीब के घर का सूखा भूसा, सूखा घास खाने से इनकार कर दिया। वह हरी घास खाने की आदी थी, वह कीमती घास खाने की आदी थी। वह गरीब बहुत परेशान हुआ। बहुत मनाया, समझाया। कहा, माता! सब तरह से उसके हाथ-पैर जोड़े। लेकिन गाय कहीं सुनती है? घबड़ा गया।
गांव में एक बूढ़ा आदमी था जानकार पशुओं के बाबत। उसके पास गया और कहा, मैं क्या करूं? मैं तो गरीब आदमी हूं, सूखा घास है मेरे पास। हरी घास मैं कहां से ला सकता हूं बेमौसम में! राजा के घर की गाय लेकर मुश्किल में पड़ गया। दो दिन से भूखी खड़ी है।
उस बूढ़े आदमी ने कहा, तू बाजार जा और एक हरे रंग का चश्मा खरीद ला, और चश्मा गाय की आंख पर चढ़ा दे। चीजें हरी हों या न हों, हरी दिख सकती हैं। फिर उसने कहा, गाय को क्या पता चलेगा कि घास हरी है या नहीं! सवाल गाय को हरी दिखनी चाहिए, बात खतम हो गई।
वह गरीब आदमी एक चश्मा खरीद लाया और उसने गाय की आंख पर चश्मा लगा दिया। गाय वह सूखे घास को खाने लगी, क्योंकि घास अब हरा दिखाई पड़ रहा था। हम सारे लोग भी चश्मे चढ़ाए हुए हैं और चीजों को वैसा देख रहे हैं जैसी
वे नहीं हैं। जरा सा चश्मा बदल लें, और चीजें दूसरी दिखाई पड़ने लगती हैं। लेकिन एक बात ध्यान रहे, जब तक चश्मा है, तब तक चीजें वैसी नहीं दिखाई पड़ सकतीं जैसी वे हैं। क्योंकि चश्मा कुछ न कुछ करेगा। और सब चश्मे रंगीन हैं। सब चश्मे रंगीन हैं, क्योंकि सब चश्मे किन्हीं व्यक्तियों, किन्हीं परंपराओं के द्वारा निर्मित हुए हैं। परंपराएं रंग देती हैं।
जब एक आदमी कहता है, मैं भारतीय! तो वह यह कहता है कि मैं एक खास तरह के देखने का मेरा ढंग है, जो और दूसरों का नहीं है। चीन के रहने वाले का नहीं है, जापान के रहने वाले का नहीं है। मैं भारतीय हूं, मेरा एक खास तरह का देखने का ढंग है। भारतीय होने का क्या मतलब है? जब एक आदमी कहता है, हिंदू, ईसाई, बौद्ध, तो वह यह कहता है कि मेरा एक खास ढंग है चीजों को देखने का-- बौद्ध। उस परंपरा के चश्मे से मैं देखता हूं चीजों को। जब एक आदमी कहता है, इस्लाम, तो वह कहता है, मैं इस्लाम के चश्मे से देखता हूं चीजों को। लेकिन कोई आदमी चीजों को देखने को राजी नहीं है, चश्मों को स्थापित करने को राजी है। तो फिर सत्य को कभी भी नहीं जान सकता। इस्लाम से जो देखा जाएगा, वह वही होगा जो इस्लाम से देखा जा सकता है, वह वह नहीं होगा जो है।
जब तक हम चश्मों पर जोर देते हैं, दृष्टियों पर जोर देते हैं, सिद्धांतों पर जोर देते हैं, परंपराओं पर जोर देते हैं, तब तक हमारी सत्य की खोज शुरू नहीं हुई है। तब तक हम यह कहते हैं, सत्य को ऐसा होना चाहिए। यह हम पहले तय करते हैं सत्य को बिना जाने। यह हम पहले तय करते हैं कि सत्य को कैसा होना चाहिए और वह तय करके फिर हम सत्य के पास जाते हैं--सत्य वैसा ही हो जाता है, क्योंकि हमारा चश्मा जिस रंग का है वैसा हमें दिखाई पड़ने लगता है।
इसलिए दुनिया में कोई तीन सौ धर्म हैं, और तीन सौ ही धर्म के मानने वालों को सत्य वैसा दिखाई पड़ता है जैसा उनकी किताब में लिखा है। वह दिखाई पड़ेगा ही, इसमें सत्य का कोई कसूर नहीं है। इसमें अपनी आंख पर चढ़ा हुआ चश्मा है। जो आदमी यहां हरे रंग का चश्मा लगा कर खड़ा होगा, उसको सारी चीजें

हरी दिखाई पड़ेंगी। और वह कहेगा कि मुझे दिखाई पड़ रही हैं, इसलिए मैं कैसे कहूं कि असत्य हैं? सत्य हैं! मुझे दिखाई पड़ रहा है वही सत्य है।
इसलिए ध्यान रहे, जो आदमी यह कहता है कि जो मुझे दिखाई पड़ता है वही सत्य है, वह सत्य से भी ज्यादा अपनी दृष्टि की कीमत बता रहा है।
और सत्य उसे दिखाई पड़ सकता है, जो अपनी दृष्टि को छोड़ने को राजी है। जो कहता है, जो मुझे दिखाई पड़ता है वह नहीं, जो है, उसकी मुझे फिकर है।
तो सत्य की खोज की पहली शर्त हैः अपनी दृष्टि को छोड़ने की सामर्थ्य। अपने सीखे हुए शब्दों को छोड़ने की हिम्मत। अपने शास्त्र को, अपने पंथ को, अपने संप्रदाय को एक तरफ हटाने की हिम्मत। इसके लिए जो आदमी तैयार हो जाता है, वह आदमी सीधा देख सकता है कि क्या है। हम सीधे कभी भी नहीं देखते, हमारा देखना सब बंधा हुआ देखना है।
एक पत्थर रखा हुआ है। एक बच्चे को बचपन से सिखाया गया है--यह भगवान है। दूसरे बच्चे को बचपन से सिखाया गया है कि यह कुफ्र है। यह भगवान नहीं है, यह पाप है इसको भगवान मानना। ये दोनों बच्चे उस पत्थर के सामने से निकलते हैं। एक हाथ जोड़ कर नमस्कार करता है, दूसरा मौका मिलते ही उस पत्थर को लात मार कर तोड़ डालना चाहता है। ये दोनों ही उस पत्थर को नहीं देख रहे हैं जो है! एक देख रहा है--भगवान, जो उसने सीखा है। और एक देख रहा है--पाप, जो उसने सीखा है। इन दोनों की भूल एक है। ये दोनों अलग-अलग तरह के लोग नहीं हैं। हम कहेंगे, दोनों उलटे हैं। एक मारता है लात, एक करता है पूजा; दोनों उलटे हैं।
दोनों उलटे नहीं हैं, दोनों बिल्कुल एक जैसे हैं। एक ने यह सीखा है, दूसरे ने वह सीखा है। दोनों अपने सीखने को मानते हैं। पत्थर को कोई देखने को राजी नहीं है कि वह क्या है।
पत्थर न तो पाप है और न भगवान है; पत्थर सिर्फ पत्थर है। लेकिन उस पत्थर की सीधी सच्चाई को देखने के लिए अपनी दृष्टि से छुटकारा बहुत जरूरी है। नहीं तो एक पत्थर को तोड़ने में जान गंवा देगा और दूसरा पत्थर को बचाने में जान गंवा देगा, और दोनों में से कोई उसको नहीं देखेंगे जो था। जो था, उसे देखते, तो शायद दोनों हंसते और कहते कि हम दोनों पागल हैं! पत्थर पत्थर है, न तो वह भगवान है और न ही वह पाप है कि तोड़ा जाए; न वह पूजने योग्य है, न तोड़ने योग्य है।
यह कभी आपने सोचा कि पूजा करने वाला और तोड़ने वाला, दोनों पत्थर नहीं देख रहे हैं, दोनों कुछ और देख रहे हैं! मूर्तिभंजक और मूर्तिपूजक, दोनों ही पत्थर नहीं देखते। एक मूर्ति देखता है भगवान की, दूसरा मूर्ति देखता है शैतान की कि तोड़ देने योग्य है, मिटा देने से पुण्य होगा। एक को पूजने से पुण्य होता है। लेकिन बेचारे पत्थर को कोई भी नहीं देखता। मूर्तिपूजक मर जाएगा, मूर्तिभंजक मर जाएगा, और तब भी वह पत्थर इस दुनिया में होगा। लेकिन तब वह क्या होगा? भगवान होगा कि कुफ्र होगा? तब वह सिर्फ पत्थर होगा। वह अभी भी वही है। उस पत्थर को पता भी नहीं है कि कोई मेरी पूजा करता है या कोई मुझे तोड़ने आता है। अगर पत्थर को पता होगा तो बहुत हंसता होगा हिंदू पर, बहुत हंसता होगा मुसलमान पर कि कैसे पागल हो! मैं सिर्फ पत्थर हूं, मैं जो हूं वह हूं।
लेकिन हम, जो है, उसे कभी देखते ही नहीं। हम तो जो देखने के लिए तैयार किए गए हैं, वही देखते हैं।
उन्नीस सौ बावन में, हिमालय की तराई में नीलगाय नाम का जानवर होता है, उसने खेतों में बहुत उत्पात कर रखा था। बहुत नुकसान कर रहा था। उसकी संख्या बहुत बढ़ गई थी। तो संसद में सवाल उठा कि नीलगाय को गोली मारनी जरूरी हो गई है, लेकिन गाय शब्द उसमें जुड़ा है, उसको गोली कैसे मारी जाए? तो संसद में एक समझदार आदमी ने कहा कि इस बात को मत उठाइए, पहले उसका नाम नीलघोड़ा कर दीजिए, फिर गोली मारना आसान हो जाएगा। संसद ने तय किया कि उसका नाम नीलगाय नहीं है, नीलघोड़ा है। और उसके बाद उसको गोली मारी गई, धड़ाधड़ नीलगाय मारी गई, लेकिन किसी हिंदू ने एतराज नहीं उठाया। क्योंकि नीलघोड़ा के मरने से हिंदू को क्या मतलब? नीलगाय मरती तो झगड़ा होता। क्योंकि वह जो गाय का चश्मा था, वह दिक्कत ला देता, वह खड़ी कर देता फौरन

झंझट। लेकिन कोई झंझट नहीं हुई। बड़े होशियार लोग! जरा... और वह नीलगाय बेचारी जो थी वही है, चाहे नीलघोड़ा कहो, चाहे नीलगाय। उसे पता भी नहीं चला होगा कि संसद ने हमारा नाम बदल कर मरने की तैयारी कर दी। उसको कोई पता नहीं चला होगा कि आदमी कैसे खेल खेलता है।
लेकिन उसी गांव में अगर वह नीलगाय होती तो झगड़ा खड़ा होता, नीलघोड़ा हो
गई तो झगड़ा खड़ा नहीं होगा। क्योंकि हम उसे तो देखते ही नहीं जो है, हम तो वह देखते हैं जो हम चश्मा लगा लेते हैं। नीलगाय थी तो वह हमारे धर्म का प्रतीक थी। नीलघोड़ा हो गई तो बात खतम हो गई।
अगर हिंदू-मुस्लिम दंगा हो, तो आपकी टोपी उठा कर चोटी देखी जाएगी। अगर चोटी है तो मुसलमान मार डालेगा, अगर चोटी नहीं है तो हिंदू मार डालेगा। आपसे किसी को मतलब नहीं है, अपने प्रतीक से मतलब है। वह चोटी, वह जनेऊ, अपने प्रतीक से मतलब है। उस आदमी को कोई नहीं देख रहा कि जो वहां खड़ा है। उस आदमी से किसी का कोई संबंध नहीं है।
अपनी इमेज हम आदमी पर आरोपित करते हैं और उसके माध्यम से देखते हैं।
हम कभी भी सत्य को नहीं जान सकते हैं। जो आदमी एक प्रतिमा के माध्यम से जीवन को देखता है, वह सत्य को कभी नहीं जान सकता।
अगर किसी आदमी ने कह दिया कि मैं--यह आदमी मुसलमान है। बस, आपने मुसलमान की एक धारणा बना रखी है, अब आप उसी धारणा से मुझे देखेंगे। अब जो मैं हूं, वह आप कभी देखने वाले नहीं हैं। अब मैं दिखूंगा ही नहीं आपको।
और यह ध्यान रहे कि मुसलमान नंबर एक, मुसलमान नंबर दो, एक से आदमी नहीं हैं; मुसलमान नंबर तीन, तीसरे तरह का आदमी है; मुसलमान नंबर चार, चौथे तरह का आदमी है। मुसलमान जैसा कोई भी आदमी नहीं है, एक-एक आदमी इंडिविजुअल है। लेकिन जैसे ही हमने कह दिया मुसलमान, इंडिविजुअल खत्म हो गया। व्यक्ति के अपने मूल्य हैं, एक टाइप, एक इमेज खड़ा हो गया कि मुसलमान यानी क्या। और मुसलमान यानी क्या, जो आपने सीखा है मुसलमान के बाबत वह। और अब यह आदमी आपको वैसा ही दिखाई पड़ेगा। वह वैसा ही दिखाई पड़ेगा। और इस आदमी के साथ आप जो व्यवहार करेंगे, वह इस आदमी के साथ नहीं है, वह उस आदमी के साथ है जिसको आप सोच रहे हैं कि यह है।
इसलिए दुनिया में हम आदमियों से भी नहीं मिल पाते, सत्य से मिलना तो बहुत दूर है। व्यक्ति और व्यक्ति के बीच भी मिलन नहीं हो पाता, हर आदमी अपनी इमेज से मिल रहा है। हर आदमी इमेजिनेशन से घिरा हुआ है, कल्पना से घिरा हुआ है। दुनिया सत्य की बहुत दूसरी है।
एक आदमी गेरुआ वस्त्र पहने खड़ा हुआ है, आप फौरन झुक कर उसके पैर छू लेंगे। यही आदमी गेरुआ वस्त्र पहने हुए नहीं खड़ा है, और आप भूल कर पैर छूने वाले नहीं हैं। आपने किसके पैर छुए? इस आदमी के जो यह है? या आपकी गेरुआ वस्त्र के प्रति एक धारणा है, उस धारणा के आप पैर छू रहे हैं? आदमियों से किसी को कोई मतलब नहीं है।
ठक्कर बापा के जीवन में मैं पढ़ता था, कि वे अहमदाबाद आ रहे हैं किसी मीटिंग में बोलने के लिए। एक थर्ड क्लास के डिब्बे में चढ़े हुए हैं। एक आदमी--पूरे डिब्बे में भीड़ है भारी--और एक आदमी पूरी बेंच पर कब्जा जमाए हुए लेटा हुआ है, आराम से अखबार पढ़ रहा है। ठक्कर बापा ने उससे कहा कि मेरे भाई, मैं बूढ़ा आदमी हूं, अगर मुझे थोड़ा बैठ जाने दो!
चुप रहो! बात मत करना बैठने-वैठने की। दूसरे डिब्बे में चले जाओ! उसने लौट कर भी नहीं देखा कि कौन है। अखबार पढ़ रहा है और बगल में बैठे हुए आदमी से थोड़ी देर में कहता है, ठक्कर बापा का भाषण है अहमदाबाद में। बड़ा अच्छा आदमी है, बड़ा अदभुत आदमी है, इसको सुनने मुझे भी जाना है, तुम भी चलोगे? और ठक्कर बापा पीछे खड़े हैं, जिनसे वह कहता है, बुड्ढे बकवास मत कर, चुपचाप खड़ा रह!
यह किस ठक्कर बापा से मिलने की बात कर रहा है? किस ठक्कर बापा को देखने
जा रहा है? और यह जाएगा। और पैर भी छू सकता है। और वहां प्रभावित होकर लौटेगा कि गजब का आदमी था। और वह आदमी बगल में खड़ा था, जिसको बैठने भी नहीं दे रहा है।

जो है, उसकी तरफ हमारी कोई नजर नहीं है। हमारी नजर वहां अटकी है जो हमने सोच रखा है। हम सब अपने चश्मों से बंधे हुए लोग हैं। जिंदगी के सब पहलुओं पर हमारे चश्मे महत्वपूर्ण हैं, सत्य महत्वपूर्ण नहीं है। और ध्यान रहे, जिसके लिए चश्मा महत्वपूर्ण है, वह सत्य को कभी भी नहीं जान सकता। सत्य की खोज में पहला त्याग है--चश्मे का त्याग।
बहुत मुश्किल है। क्योंकि दृष्टि का त्याग सबसे कठिन बात है। क्यों कठिन बात है? क्योंकि दृष्टि को हमने इतनी प्रगाढ़ता से सीखा है कि हम में और दृष्टि में कोई फर्क ही नहीं रह गया है। अगर आपसे आपकी दृष्टि छीन ली जाए, तो आप कहोगे कि मैं तो मिट गया, मैं तो बचा ही नहीं, फिर मैं क्या रहा! आप और आपकी दृष्टि बिल्कुल एक हो गए हैं। तो दृष्टि को छोड़ना करीब-करीब मरने जैसा लगेगा। और इसलिए यह समझ लेना कि सत्य की दिशा में वही बढ़ते हैं जो अपने को छोड़ने और मरने के लिए तैयार हैं। जो कहते हैं कि हम तो वही जानेंगे जो है।
बड़ा कठिन है यह। कल एक मुसलमान ने आपको धोखा दे दिया था। फिर आज एक मुसलमान मिलता है, तो आपका मन करता है मानने का कि यह भी धोखा देगा, क्योंकि मुसलमान ने धोखा दिया था। लेकिन यह दूसरा आदमी है, यह दूसरा हिंदू है, दूसरा ईसाई है, दूसरा जैन है, यह वही आदमी नहीं है। इसका मतलब यह है कि कल जो आपने सीखा था, उसको बीच में मत लाइए, उसको हटाइए। क्योंकि यह बिल्कुल दूसरा आदमी है। इससे उस आदमी का कोई संबंध नहीं जिसको आपने कल जाना था। उससे इसके बाबत कोई नतीजा नहीं लिया जा सकता।
बड़ी कठिन है दुनिया। दूसरा था वह आदमी, यह तो ठीक है; मैं आपसे कल मिला था, आज मिल रहा हूं, आज मैं दूसरा आदमी हूं, वही नहीं; चौबीस घंटे में बहुत कुछ बदल गया है, गंगा बहुत बह गई है।
बुद्ध के पास एक आदमी आया और उसने उनके ऊपर थूक दिया। बहुत गुस्से में था। बुद्ध ने अपनी चादर से थूक पोंछ लिया और उस आदमी से कहा, कुछ और कहना है?
बुद्ध के पास बैठे भिक्षुओं को तो आग लग गई। उन्होंने कहा, पागल हो गए हैं आप! वह आदमी थूक रहा है और आप उससे पूछ रहे हैं, और कुछ कहना है।
बुद्ध ने कहा कि जहां तक मैं समझता हूं, यह आदमी कुछ कहना चाहता है, लेकिन इतने तीव्र भाव हैं इसके कि शब्दों से नहीं कह पाता है, इसलिए थूक कर कहता है। मैं समझ गया हूं इसकी बात। इस आदमी को देखो, यह आदमी इतने जोर से भरा हुआ है किसी बात से कि बेचारा शब्दों से नहीं कह सकता, इसलिए थूक कर कह रहा है। मैं इसे देख रहा हूं।
अब यह आदमी जैसे बिना चश्मे के देख रहा है। जैसे सीधा देख रहा है। लेकिन बुद्ध का शिष्य आनंद बोला कि हमारे बरदाश्त के बाहर है।
वह आदमी तो हैरान हो गया जिसने थूका था। वह चला गया। रात भर सो नहीं सका। दूसरे दिन क्षमा मांगने आया। उसने बुद्ध के पैर पकड़ लिए, रोने लगा, आंसू टपकाने लगा। बुद्ध ने कहा, देखो-देखो! यह वही आदमी है जिस पर कल तुम नाराज हुए। गंगा में कितना पानी बह गया! कल यह थूकने आया था, आज यह पैर पकड़ कर आंसू गिरा रहा है। और मैं तुमसे कहता हूं, आनंद, आज भी इसका मन इतने भाव से भरा है कि यह कह नहीं पा रहा है, यह कुछ कहना चाहता है, आंसू टपका रहा है। वह आदमी कहने लगा, मुझे माफ कर दें!
बुद्ध ने कहा, पागल, किसको कौन माफ करे? चौबीस घंटे में मैं भी बदल गया, तू भी बदल गया। अब वे दोनों घटनाएं जा चुकी हैं। अब वह कोई भी नहीं है इस दुनिया में, कौन किसको माफ करे! अब मैं वह नहीं हूं जो चौबीस घंटे पहले तू आया था तब था। अगर मैं अब भी वही हूं, तो मैं मरा हुआ आदमी हूं। सिर्फ मरा हुआ नहीं बदलता है, जिंदा तो बदल जाता है। जिंदगी का मतलब है बदल जाना। जिंदगी का मतलब है परिवर्तन। और तू भी अब वही नहीं है। सोच! लौट कर देख! तू अब वह कहां है जो थूक गया था मेरे ऊपर? तू बिल्कुल दूसरा आदमी है। इसलिए छोड़ो। वे दोनों अब नहीं हैं, वे जा चुके। पानी पर खींची हुई लकीरों की तरह मिट गए। मैं तुझे देखूं, तू मुझे देख, ज्यादा उचित है। अब उनको, जो अब नहीं रहे, बीच में लाने की कोई भी जरूरत नहीं है।
लेकिन वह आदमी कहता है, नहीं, मुझे माफ कर दो!

तो बुद्ध अपने भिक्षुओं से कहते हैं, देखते हो, यह आदमी कल ही रुका हुआ है। यह मुझे नहीं देख रहा है, यह चौबीस घंटे पहले उस आदमी को देख रहा है जिसके ऊपर थूक गया था। यह अपने को भी नहीं जान रहा है जो यह अभी है। यह अपने को वहीं जान रहा है, चौबीस घंटे पहले, जब थूक गया था। यह दूसरा आदमी हो गया। तुझे मैं कैसे माफ करूं? तू वह है ही नहीं जो थूक गया था। क्योंकि थूक जो गया था, वह रो नहीं सकता है, वह आंसू नहीं बहा सकता है, वह पैर नहीं पकड़ सकता है। जिसने क्रोध किया था, वही क्षमा मांगने नहीं आया है। क्योंकि क्षमा मांगने का व्यक्तित्व ही दूसरा है, क्रोध का व्यक्तित्व ही दूसरा है।
एक आदमी और दूसरे आदमी में तो भेद है ही, एक आदमी में भी एक क्षण के बाद भेद है। लेकिन हम हमेशा वही देखते हैं जो हमने कल देखा था, जो हमने परसों देखा था। जो बीत गया, वह चश्मा हमारी आंखों पर लग जाता है, हम उसी से जिंदगी को देखते चले जाते हैं।
आप जिस पत्नी को विवाह करके ले आए थे बीस साल पहले, या जो पत्नी बीस साल पहले आपको पति बना कर ले आई थी, शायद ही आपने बीस साल में उसे गौर से देखा हो--कि वह औरत अब कहां है जो आप लाए थे? वह आदमी अब कहां है जो आप लाए थे? वे सब बह गए। लेकिन धारणा वहीं रुकी है, चीजें वहीं अटकी हैं। और हम उसी से तौल रहे हैं, और उसी के पास जी रहे हैं। वह सब जा चुका है, सिवाय स्मृति के और कहीं भी नहीं रह गया है। रोज सब बदल जाता है, रोज सब बदल जाता है, कोई भी ठहरा हुआ नहीं है। जिंदगी एक बहाव है।
सत्य को वे जान सकते हैं, जो बहाव के साथ खड़े हो जाते हैं और पिछली दृष्टि को बह जाने देते हैं, रुकने नहीं देते।
लेकिन हमारी सारी दृष्टियां अटकी हुई हैं। जीवन के सत्य को जानने के लिए, इतना निर्मल होने की जरूरत, इतना इनोसेंट, जैसे दर्पण। आपने फर्क देखा है? फोटोग्राफ और दर्पण में कुछ फर्क दिखता है?
फोटोग्राफ पकड़ लेता है जो भी उसे दिखाई पड़ता है, फिर उसे छोड़ता नहीं। फोटोग्राफ की दृष्टि होती है, इमेज होता है। फोटोग्राफ बहुत सेंसिटिव है, जो चीज दिख गई वह उसको एकदम पकड़ लेता है, फिर उसको छोड़ता नहीं। फिर वह उसको ही पकड़े जीता है। फिर जिंदगी भर अब वह इसी को पकड़े रहेगा। बहुत चित्र निकलेंगे फिर इसके सामने से--सूरज उगेंगे, और चांद निकलेगा, और पक्षी उड़ेंगे--लेकिन नहीं, अब वह नहीं पकड़ेगा। उसने जो पकड़ लिया वह पकड़ लिया। इसलिए फोटोग्राफ मर जाता है।
दर्पण मरता नहीं है। वह भी देखता है, फोटोग्राफ से भी ज्यादा साफ देखता है, लेकिन पकड़ता नहीं। चित्र सामने से बीत जाते हैं, दर्पण खाली हो जाता है। फिर नये चित्र आते हैं, उनको देखता है, फिर दर्पण खाली हो जाता है। दर्पण रोज खाली हो जाता है, प्रतिपल खाली हो जाता है, इसलिए रोज फिर से पकड़ने के लिए ताजा हो जाता है। दर्पण रोज दर्शन करता है, क्योंकि दर्पण दृष्टि नहीं बांधता, दर्पण पकड़ नहीं लेता।
हम सब फोटोग्राफ जैसे लोग हैं। हमारा जो माइंड है, वह जो पकड़ लेता है
तो पकड़ ही लेता है, फिर उससे छूटता नहीं। और इसलिए हमें सत्य का कभी पता नहीं चलता; जो हमने पकड़ रखा है उसी के माध्यम से हम जिंदगी को देखते रहते हैं।
सत्य को जान सकते हैं वे, जो फोटोग्राफ की तरह व्यवहार नहीं करते खोपड़ी से, जो खोपड़ी से दर्पण की तरह का व्यवहार लेते हैं। जिनकी आंखें पकड़ती नहीं, खाली हैं। जिनकी आंखें मिरर लाइक हैं, चीजें बदल जाती हैं और आंखें खाली हो जाती हैं।
लेकिन नहीं, यह मुश्किल है बहुत। हम सब अटक जाते हैं। बूढ़ा आदमी बचपन
की याद करता रहता है। कहता है, वे दिन! वह बूढ़ा हो गया, लेकिन स्मृति में वह बच्चा बना रहता है। वह बूढ़ा हो गया, लेकिन स्मृति में जवान बना रहता है। और उन जगह अटका रहता है जहां वह कभी था। अब वहां नहीं है, अब सब बदल चुका है, सब जा चुका है, सब खो चुका है।
नेपोलियन हार गया, तो उसे सेंट हेलेना के एक छोटे से द्वीप पर कैद कर दिया गया। सम्राट था, तो हाथ में जंजीरें नहीं डाली गईं, द्वीप पर कैद कर दिया। द्वीप के बाहर कहीं जा नहीं सकता था, द्वीप पर पहरा था पूरे पर।

लेकिन द्वीप के भीतर घूम सकता था, फिर सकता था, जो भी करना हो कर सकता था। संगी-साथी दिए थे, डाक्टर दिया था, सब इंतजाम किया था।
दूसरे दिन ही सुबह, आज रात बंद किया गया, दूसरे दिन सुबह अपने डाक्टर
को साथ लिए घूमने निकला है नेपोलियन। एक छोटी सी पगडंडी पर एक घासवाली औरत घास का गट्ठा लिए चली आती है। रास्ता संकरा है, डाक्टर चिल्ला कर कहता है, ओ घसियारिन, हट जा वहां से! देखती नहीं, कौन आ रहा है--नेपोलियन!
नेपोलियन डाक्टर को कहता है, पागल, तू कल के नेपोलियन का खयाल कर रहा है। अब नेपोलियन को देख कर कोई भी नहीं हटेगा। हटने की कोई जरूरत भी नहीं है। वह वक्त गया, जब मैं पहाड़ को कहता कि हट जाओ! तो पहाड़ हट जाता। अब हमें हट जाना चाहिए।
नेपोलियन पगडंडी से उतर कर नीचे खड़ा हो जाता है। वह डाक्टर कहता है, क्या कहते हो तुम? क्योंकि डाक्टर को पता नहीं है, सब कुछ बदल गया। लेकिन नेपोलियन का माइंड ज्यादा मिरर लाइक मालूम होता है। वह कहता है, वह बात गई। अब घासवाली के लिए मुझे हट जाना चाहिए। वह वक्त गया, जब मैं सम्राटों को कहता कि हट जाओ! यह दिमाग, यह चित्त की बात, जैसे पीछे सब पुंछ गया। अब नहीं है कुछ। अब हम चीजों को फिर सीधा-साफ देख सकते हैं।
सत्य कोई ऐसी चीज नहीं है कि कहीं रखी है और आप चले जाएंगे और देख लेंगे। इस भूल में मत पड़ना। सत्य है पूरे जीवन का सतत अनुभव। सत्य कोई ऐसी चीज नहीं है कि कहीं हम गए, उठाया परदा और दर्शन कर लिया सत्य का। सत्य का अर्थ हैः पूरे जीवन का सार-संक्षेप। सत्य का अर्थ हैः पूरे जीवन की अनुभूति की उपलब्धि। और पूरे जीवन की अनुभूति की उपलब्धि बहुत डायनेमिक है, स्टेटिक नहीं है। रोज-रोज जानना पड़ता है, रोज-रोज भूल जाना पड़ता है। रोज-रोज जानते-जानते एक क्षण ऐसा आता है कि जीवन के प्रत्यय का बोध हो जाता है कि क्या है जीवन। लेकिन उस जीवन के प्रत्यय के बोध के लिए जरूरी है कि हम जीवन के साथ हों। हम हमेशा जीवन से पीछे होते हैं। हम स्मृति में होते हैं, जीवन सदा आगे होता है।
सुकरात मरने के करीब था, उसको जहर दिया जा रहा था। अब जिस आदमी को जहर मिल रहा है, अगर आपको जहर मिल रहा होता तो आप क्या सोचते? क्या करते? आप पड़े हुए हैं खाट पर और जहर तैयार किया जा रहा है। बस आधी घड़ी में जहर आपको दे दिया जाएगा। आप क्या सोचते उस वक्त? सोचते बचपन की, सोचते जवानी की, सोचते मित्रों की, सोचते उस सब की जो था। बहुत घबड़ाते कि सब छूट जाएगा, सब छूट जाएगा! गया मैं, मरा मैं, अब जिंदगी हाथ से गई!
लेकिन सुकरात? मित्र रो रहे हैं उसके पास बैठ कर, उनकी आंखों से आंसू बंद नहीं होते। तो सुकरात कहता है, किसके लिए रोते हो? किसके लिए रोते हो? तो वे कहते हैं कि तुम्हारे लिए। सुकरात ने कहा कि जो मैं था, जिसके लिए तुम रोते हो, वह तो कभी का जा चुका, वह अब मरेगा नहीं, वह तो मर ही चुका, वह तो अब है ही नहीं। तुम्हारी जो स्मृतियां हैं मेरे संबंध में, वह तो कभी का खो चुका आदमी।
और सुकरात उठ कर बाहर जाता है और जहर पीसने वाले से पूछता है, कितनी देर और?
तो जहर वाला कहता है, पागल हो गए हो? मैं तुम्हारी वजह से धीरे-धीरे पीस रहा हूं। कि इतना अच्छा आदमी, थोड़ी देर और जी ले! तुम क्यों बार-बार पूछते हो? तुम्हारा मतलब क्या है?
तो सुकरात कहता है कि मैं तो जानने को आतुर हूं कि यह मौत क्या है? मैं बिल्कुल तैयार हूं, तुम जहर ले आओ! मैं इस मौत को जानना चाहता हूं, यह मौत क्या है? मेरा मन बिल्कुल तैयार है। मेरा मन बिल्कुल खाली है। मेरे मन में कुछ भी नहीं है जो हो चुका, जो जा चुका। जो हो रहा है, उसको मैं जानना चाहता हूं। तुम जल्दी जहर ले आओ। मैं जान लूं कि यह मौत क्या है?
अब ऐसा आदमी कभी मर नहीं सकता, जो मौत के सत्य को जानने के लिए भी इतनी तैयारी दिखलाता है। लेकिन अधिक लोग मौत को बिना जाने मर जाते हैं। इसीलिए बार-बार जन्मते हैं और बार-बार मरते हैं। अधिक लोग मौत को बिना जाने मर जाते हैं, क्योंकि अधिक लोग जीवन को ही बिना जाने मर जाते हैं। मौत को जानना तो मुश्किल है, जो जीवन को ही नहीं जान पाता है।

जीवन को ही हम नहीं जान पाते हैं, क्योंकि हमारे माइंड का फोकस अतीत में लगा रहता है और जिंदगी हमेशा वर्तमान में है। लोग हमेशा पीछे देखते रहते हैं, और जिंदगी अभी है--हियर एंड नाउ! अभी और यहीं! इसी वक्त! हां, जब बीत जाएगा यह क्षण, तब हम फिर इस पर फोकस लगा लेंगे।
अभी आप मुझे सुन रहे हैं, तब आप और बातें सोच रहे होंगे। और मैं बोल कर गया कि मैंने जो बोला है, वह आप सोचना शुरू कर देंगे। यह अजीब सा मामला है। तब आप, जब मैं बोल रहा था, तब कुछ और सोच रहे थे। सोच रहे थे कि यह आदमी जो बोल रहा है, गीता से मेल खाता है कि नहीं; यह आदमी जो बोल रहा है, हिंदू धर्म के पक्ष में है कि विपक्ष में; यह आदमी जो बोल रहा है, यह ठीक है कि गलत; यह सब आप सोच रहे थे। तब आप चूक गए उससे जो मैं बोल रहा था। और मैं बोल कर यहां से गया तो फिर आप सोचेंगेः इस आदमी ने यह कहा, इस आदमी ने वह कहा, इस आदमी ने यह कहा। तब फिर माइंड पीछे लगा है।
और तब जिंदगी जहां से आती है वहीं से हमारा संपर्क नहीं हो पाता। हम अतीत में अटके रह जाते हैं और जिंदगी अभी है। ऐसा जीवन भर चलता है, हम जीवन भर चूक जाते हैं और नहीं जान पाते कि सत्य क्या है। फिर किताबों में पढ़ते हैं, फिर शास्त्रों से शब्द सीख लेते हैं और उन्हीं शब्दों को सत्य मान लेते हैं।
जीवन से जिन्हें सत्य नहीं मिला, उन्हें शास्त्रों से कैसे मिल सकता है? और जिन्हें जीवन से मिल जाता है, उन्हें शास्त्रों के सत्य की जरूरत क्या है? इतना विराट जीवन हमें सत्य नहीं दिखा पाता, तो किताबें आदमी की हमें सत्य दिखा देंगी?
रवींद्रनाथ ने एक संस्मरण लिखा है। लिखा है कि एक पूर्णिमा की रात मैं एक बजरे पर, एक नाव में एक किताब पढ़ता था। सौंदर्य-शास्त्र पर, एस्थेटिक्स पर एक शास्त्र पढ़ता था।
अब देखें मजा! पूरे चांद की रात है, झील है, सन्नाटा है, नाव है, अकेले हैं। बजाय इसके कि देखें कि सौंदर्य क्या है, पढ़ते हैं सौंदर्य-शास्त्र पर एक किताब! सौंदर्य चारों तरफ बरस रहा है। सौंदर्य पूरे वक्त झर रहा है। लेकिन बजरे में बंद करके द्वार-दरवाजा मोमबत्ती जला कर पढ़ रहे हैं सौंदर्य-शास्त्र की एक किताब। पढ़ रहे हैं सौंदर्य-शास्त्र की किताब में कि सौंदर्य क्या है, डेफिनीशन क्या है सौंदर्य की। और सौंदर्य बरस रहा है बाहर और बुला रहा है कि आओ-आओ, चिल्ला रहा है। लेकिन वे नहीं सुन रहे हैं। क्योंकि किताब पढ़ने वाला जिंदगी को कभी नहीं सुनता। इधर आंख गड़ाए हुए उस मद्दी सी रोशनी में, पीली सी रोशनी में, धुआं उठती मोमबत्ती में पढ़ रहे हैं--सौंदर्य क्या है?
दो बजे रात, थक गई हैं आंखें, किताब बंद कर दी है, फूंक मार कर मोमबत्ती बुझा दी है--और रवींद्रनाथ ने लिखा अपनी डायरी में कि दंग रह गया मैं! जैसे ही मोमबत्ती बुझी--रंध्र-रंध्र से, बजरे के द्वार-द्वार, खिड़की-खिड़की से, चांद की रोशनी भीतर भर आई। नाचने लगी चांद की रोशनी भीतर। मैं हैरान हुआ कि मोमबत्ती की रोशनी की वजह से चांद की रोशनी भीतर नहीं आ पाती! मोमबत्ती बुझी तो चांद भीतर आ गया। जरा-जरा से छेद से भी रोशनी आ गई भीतर। और रवींद्रनाथ ने लिखा है कि मैं भागा हुआ बाहर आया, क्योंकि वह जो छोटी सी रोशनी भीतर आई थी, उसने निमंत्रण दिया कि बाहर न मालूम और क्या होगा!
बाहर आकर देखा तो पूरा चांद सिर पर खड़ा है। सारे आकाश में मौन सन्नाटा है, सारी झील दर्पण बन गई है, सारी झील पर चांद बिखरा हुआ है। सौंदर्य था यहां! रवींद्रनाथ कहने लगे, मैंने अपना सिर ठोंक लिया कि मैं पागल, एक किताब खोल कर मोमबत्ती में पढ़ता था कि सौंदर्य क्या है!
फिर लिखा है कि उस दिन से सौंदर्य की किताब नहीं खोली, क्योंकि सौंदर्य की किताब खुल गई। फिर नहीं पढ़ने गया किताब में कि सौंदर्य कहां है, क्या है। फिर जी लिया सौंदर्य को, और देख लिया सौंदर्य को, और जान लिया सौंदर्य को। फिर नहीं उठाई किताब जो अधूरी रह गई थी, उसे अधूरा ही छोड़ दिया।
जिंदगी है सत्य। सत्य किन्हीं किताबों में नहीं है। सत्य किन्हीं गुरुओं के पास नहीं है। सत्य किन्हीं दुकानों में नहीं है। और सत्य

किन्हीं मंदिरों और मस्जिदों में नहीं है। सत्य है जिंदगी में। जीवन ही सत्य है।
लेकिन उसे देखने में वे ही समर्थ हो पाते हैं जो किसी भी तरह का चश्मा, कोई धारणा, कोई कंसेप्ट, कोई अतीत की याददाश्त लेकर जिंदगी के पास नहीं जाते। जो जिंदगी के पास ऐसे जाते हैं जैसे कोरा दर्पण; और खड़े हो जाते हैं जिंदगी के सामने और जिंदगी के प्रतिफलन को बनने देते हैं अपने भीतर। और पकड़ते नहीं कोई प्रतिफलन; जो बीत जाता है, बीत जाता है। जो आ जाता है उसका स्वागत है, जो चला जाता है उसकी विस्मृति है। और जिनका मन ऐसे दर्पण की तरह जिंदगी को देखता हुआ गुजरता है, प्रतिपल--दुख में, सुख में, प्रेम में, घृणा में, क्रोध में, शांति में, अशांति में, तनाव में, जिंदगी में, मृत्यु में-- जो प्रतिपल दर्पण की तरह गुजरते चले जाते हैं और जीवन की पूरीशृंखला को अनुभव करते हैं, वे जान लेते हैं कि सत्य क्या है।
सिवाय इसके कभी कोई सत्य नहीं जाना गया है। सत्य को जानने का अर्थ हैः स्वयं को दर्पण की तरह बना लेना। और दर्पण की कोई दृष्टि नहीं है। दर्पण यह नहीं कहता कि ऐसे हो जाओ। दर्पण कहता है, जैसे हो हम वैसे ही देख लेंगे, हम नहीं कोई आग्रह करते। दर्पण का कोई आग्रह नहीं है।
इसलिए मैं कहता हूं, सत्याग्रह शब्द बड़ा झूठा शब्द है। सत्य का कोई आग्रह नहीं होता; अनाग्रह वृत्ति में ही सत्य का अनुभव होता है। सत्याग्रह शब्द बड़ा गलत शब्द है, बड़ा उलटा शब्द है। सत्य का आग्रह! सत्य का आग्रह होता ही नहीं। जहां आग्रह है, वहां सत्य नहीं होता। क्योंकि आग्रह का मतलब है कि मैं कहता हूं ऐसा।
सत्य है अनाग्रह। अनाग्रह चित्त, पक्षपातशून्य, अनप्रिज्युडिस्ड, जिसका अपना कोई मत नहीं, कोई पक्ष नहीं, कोई धारणा नहीं; जो कहता है, मैं एक खाली दर्पण हूं; उसके जीवन में उपलब्धि होती है सत्य की।
इस दर्पण की जो मैंने बात कही, इस दर्पण को ही समाधि कहते हैं। इस दर्पण जैसे चित्त का नाम समाधिस्थ चित्त है। और इस समाधिस्थ चित्त के द्वार से जो उपलब्ध हो जाता है, उसका नाम सत्य है।
यह प्रत्येक को अपना ही खोजना पड़ता है, यह उधार नहीं मिलता। यह ट्रांसफरेबल नहीं है, यह कमोडिटी ऐसी नहीं है कि कोई किसी को दे दे। प्रत्येक को स्वयं ही जानना पड़ता है। असत्य दूसरे से मिल सकता है, सत्य स्वयं से ही खोजना पड़ता है। बल्कि सच तो यह है कि दूसरे से जो मिलता है, वह दूसरे से मिलने के कारण असत्य हो जाता है। वह उसके पास सत्य रहा हो, यह हो सकता है। कृष्ण ने जो जाना वह सत्य हो; आपको जैसे ही मिलेगा, असत्य हो जाएगा। वह जो हस्तांतरण है, उसकी प्रक्रिया में ही वह नष्ट हो जाता है। इतना सूक्ष्म है, इतना तरल है, इतना जीवंत है कि देते-देते ही मर जाता है। दिया नहीं जा सकता, सिर्फ लिया जा सकता है। खुद व्यक्ति बने दर्पण की तरह तो जान सकता है, नहीं तो नहीं जान सकता है।
ऐसे ही जैसे कि हम किसी अंधे को प्रकाश के बाबत कुछ कहें। तो हम कह सकते हैं, लेकिन अंधे तक कुछ भी नहीं पहुंचता कि आपने क्या कहा। अंधे की समझ में कुछ भी नहीं आता कि प्रकाश यानी क्या? कैसे आ सकता है! आंख का अनुभव आंख ही देख सकती है। अंधी आंख को आंख का अनुभव नहीं समझाया जा सकता। तो हम इतना कर सकते हैं कि अंधे की आंख के इलाज का उपाय करें। यह तो हो सकता है। आंख वाले अंधे के लिए सहयोगी हो सकते हैं, इलाज की दिशा में। लेकिन प्रकाश का ज्ञान देने की दिशा में सहयोगी नहीं हो सकते।
इसलिए बुद्ध ने एक अदभुत बात कही है। बुद्ध ने कहा, मैं कोई उपदेशक नहीं हूं, एक उपचारक हूं, एक वैद्य हूं। इसलिए बुद्ध से कोई पूछने आता कि सत्य क्या है? तो वे कहते, यह मत पूछो। क्योंकि यह तो कहा नहीं जा सकता, और कहा भी जाए तो समझा नहीं जा सकता, और समझ भी लिया जाए तो हमेशा गलत समझ लिया जाता है। तुम यह मत पूछो कि सत्य क्या है। तुम तो यह पूछो कि आंख क्या है, जिससे सत्य जाना जाता है।
इसलिए जब मुझे आज कहा कि सत्य की खोज पर कुछ कहूं। तो सत्य की कोई खोज नहीं होती; आंख की खोज होती है। प्रकाश की कोई खोज नहीं होती; आंख की खोज होती है। आंख है तो प्रकाश है, आंख नहीं है तो प्रकाश नहीं है। होगा

प्रकाश। लेकिन जिसके पास आंख नहीं है, उसके लिए प्रकाश का क्या मतलब है! सारी दुनिया कहे कि प्रकाश है, और मेरे पास आंख नहीं है, सुनूंगा, लेकिन कोई अर्थ नहीं रखती वह बात। इतनी कठिनाई है अंधे आदमी को जिसकी हम कल्पना नहीं कर सकते, क्योंकि हम अंधे नहीं हैं।
अंधे आदमी को प्रकाश तो बहुत दूर, अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता है। अंधेरा देखने के लिए भी आंख चाहिए। अंधेरा भी आंख का अनुभव है। अंधे आदमी को अंधेरा भी नहीं दिखता। आप यह मत सोचना कि अंधा आदमी अंधेरे में रहता है। अंधेरा भी प्रकाश का ही अनुभव है। जिसको प्रकाश दिखता है, उसी को अंधेरा भी दिखता है। अंधे आदमी को अंधेरे का भी कोई पता नहीं है। क्योंकि पता होने के लिए आंख चाहिए। अंधेरे के पता होने के लिए भी आंख चाहिए।
तो जिसे अंधेरे का भी पता नहीं है, उसे प्रकाश का क्या हम ज्ञान दे सकते हैं? अगर हम उससे यह कहें कि अंधेरे से उलटा, तो भी कोई मतलब नहीं है। क्योंकि उसे अंधेरे का ही पता नहीं है कि अंधेरा क्या है।
तो जब हम सुनते हैं उन लोगों की बातें, जो कहते हैं कि परमात्मा असीम है; हमें सीमा का ही अनुभव नहीं है, असीम का क्या अनुभव होगा? वे कहते हैं, परमात्मा ज्योतिर्मय है, परमात्मा परम चैतन्य है। हमें पदार्थ का ही अनुभव नहीं है, हमें परम चैतन्य का क्या अनुभव होगा? वे कहते हैं, परमात्मा परम जीवन है। हमें मृत्यु का तक पता नहीं है, परम जीवन का हमें क्या पता होगा?
शब्द रह जाते हैं थोथे। चली हुई कारतूस जैसे होती है, कोई जान नहीं, बस दिखती है कारतूस। वैसे शब्द हमारे हाथ में रह जाते हैं थोथे, बेमानी। उन्हीं शब्दों को लेकर हम लड़ते-झगड़ते रहते हैं, और सोचते हैं कुछ निर्णय हो जाएगा। कितने ही अंधे आपस में लड़ें और तय करें, प्रकाश का कोई निर्णय नहीं होता है। आंख खुलनी चाहिए। और आंख--मिरर लाइक माइंड, एक दर्पण जैसा चित्त, वह है आंख सत्य के लिए। और जिसकी आंख खुल जाती है वह जान लेता है। और जानते ही जीवन दूसरा हो जाता है। सत्य को जानते ही जीवन सत्य हो जाता है। सत्य को बिना जाने जीवन असत्य ही रहता है, चाहे हम कितने ही उपाय करें। इसलिए मैं कहता हूं कि सत्य को पाने के लिए आपका जीवन बदलना व्यर्थ है; आप जीवन बदल ही नहीं सकते सत्य को पाए बिना। सत्य को पाने से जीवन बदलता है। जीवन की बदलाहट से सत्य नहीं मिलता, सत्य के मिलने से जीवन बदलता है। और जो आदमी सत्य को बिना पाए जीवन को बदलने की कोशिश में लगता है, वह कितना ही जीवन को बदले, वह जीवन भी असत्य जीवन ही होता है।
अगर वह प्रेम भी प्रकट करे तो असत्य होगा। अगर वह अहिंसक भी बन जाए तो भीतर हिंसा होगी। अगर वह प्रेमी भी बन जाए तो पीछे वासना होगी, अगर वह ब्रह्मचर्य भी साधे तो चित्त में सेक्स ही चलता रहेगा। सत्य को जाने बिना सारा का सारा जीवन ही असत्य होता है, चाहे हम कुछ भी करें। अंधा आदमी कुछ भी करे, टकराएगा। चाहे बाएं टकराए और चाहे दाएं टकराए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। चाहे आगे टकराए, चाहे पीछे टकराए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अंधा आदमी टकराएगा ही। टकराहट बिल्कुल स्वाभाविक है। आंख वाला आदमी नहीं टकराएगा। नहीं टकराना आंख वाले के लिए उतना ही स्वाभाविक है, जितना अंधे के लिए टकराना।
सत्य की उपलब्धि जीवन का रूपांतरण है, वह जीवन को सत्य कर जाती है। और जीवन जब तक सत्य नहीं है, तब तक आनंद भी नहीं है। असत्य के साथ कोई आनंद नहीं है, अंधेपन के साथ कोई आनंद नहीं है। अंधापन ही दुख है, असत्य ही दुख है।
लेकिन क्या करें फिर सत्य की खोज में?
जीवन को बदलने की बात मैं नहीं करता। जीवन को देखने की दृष्टि बदलने
की बात है। और वह दृष्टि जितनी ताजी, साफ, पक्षपातरहित, दृष्टिमुक्त दृष्टि, शास्त्र-शब्द से मुक्त, अतीत से मुक्त, अभी और यहां जो है उसे देखने की जितनी निर्मलता हम साधते चले जाएं, उतनी ही वह आंख खुलेगी। वह आंख खुलेगी और हम उसे जान लेंगे जो है। जो है, उसी का नाम सत्य है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं, फिर कल और आज कुछ और इस दिशा में बातें
हो सकेंगी।

नहीं; मेरी बातों से लेकिन समझ में नहीं आ जाएगा। मेरी बातें किसी काम
की नहीं हैं बहुत। हां, कुछ इशारे बन सकती हैं। और इशारे छोड़ देने के लिए होते हैं, उन्हें पकड़ा कि वे बेकार हो जाते हैं।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन सत्य की खोज
दूसरा प्रवचन

परमात्मा की अनुभूति

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक मित्र ने पूछा है कि क्या मैंने कभी परमात्मा को देखा है?

परमात्मा के संबंध में हम इस भांति सोचते हैं, जैसे उसे भी देखा जा सकता हो। जो देखा जा सकता है, वह संसार ही रहेगा। परमात्मा कभी भी देखा नहीं जा सकता; जो देख रहा है वह परमात्मा है।
इस बात को थोड़ा समझ लेना जरूरी है।
जो भी दिखाई पड़ता है उसका नाम ही संसार है और जिसको दिखाई पड़ता है उसका नाम परमात्मा है। इसलिए परमात्मा कभी दिखाई नहीं पड़ सकता है।
लेकिन कोई कहता है कि मैंने परमात्मा को देखा। बड़ी भूल कर रहा है। एक
तो परमात्मा दिखाई नहीं पड़ सकता, वह खुद परमात्मा है जिसको दिखाई पड़ता है। दूसरी बात, जहां परमात्मा का अनुभव होता है--दिखाई तो वह पड़ता नहीं, क्योंकि मैं वही हूं, आप वही हैं--लेकिन जब इस स्वयं का अनुभव होता है, तब मैं भी वहां शेष नहीं रह जाता है, वहां मैं भी गिर जाता है।
तो जो कहता है, मैंने परमात्मा को देखा, वह दोहरी भूल कर रहा है। एक तो
वह यह कहता है कि परमात्मा कोई चीज है मुझसे अलग, जो दिखाई पड़ गई। यह झूठ है। दूसरी भूल वह यह कर रहा है कि वह कह रहा है, मैंने देखा। मैं तो बचता नहीं वहां, जहां परमात्मा का अनुभव होता है। इसलिए इससे ज्यादा असत्य कोई बात नहीं हो सकती कि कोई कहे, मैं परमात्मा को देखा हूं।
लेकिन राम और कृष्ण देखे जा सकते हैं, बुद्ध और महावीर देखे जा सकते हैं। सच में ही बुद्ध और महावीर नहीं देखे जाएंगे, न राम और कृष्ण। लेकिन मनुष्य की कल्पना बहुत समर्थ है। कल्पना इतनी समर्थ है कि जो नहीं है, वह भी देखा जा सकता है। अगर कोई ठीक से कल्पना करे, तो प्रतीतियां हो सकती हैं स्वप्नवत, और उसी को लोग ईश्वर का साक्षात्कार समझ लेते हैं।
अगर कोई निरंतर धारणा करे, निरंतर कामना करे, निरंतर कल्पना करे, निरंतर पुकारे और चिल्लाए और रोए, और चौबीस घंटा स्मरण करे--कृष्ण का, कृष्ण का, कृष्ण का, तो चित्त में एक छवि बननी शुरू हो जाएगी। उस छवि को इतना प्रगाढ़ रूप मिल सकता है कि वह छवि बाहर भी दिखाई पड़ने लगे। वह प्रोजेक्शन होगा, वह प्रक्षेपण होगा। वहां कोई होगा नहीं, लेकिन दिखाई पड़ सकता है। और अगर किसी के पास कवि का हृदय हो, तब तो बहुत आसान है। टाल्सटाय का नाम सुना होगा आपने। गांधी जी अपने गुरुओं में एक टाल्सटाय की गिनती भी करते थे। वह बहुत अनूठा आदमी था। कवि हृदय, कल्पनाशील। एक रात उसे मास्को के एक ब्रिज के ऊपर, पुल के ऊपर पकड़ा गया। आधी रात, अंधेरे में खड़ा था पुल के ऊपर। पुलिसवाला जो वहां पहरे पर था, उसने पूछा कि महाशय ऐसे कैसे खड़े हैं यहां?
वह ब्रिज ऐसा था कि वहां अक्सर लोग आत्महत्या करते थे। तो एक सिपाही तैनात था इसीलिए कि वहां कोई आत्महत्या न कर सके। तो रात दो बजे टाल्सटाय को वहां देख कर उस सिपाही ने पकड़ा और कहा, आप यहां कैसे आए?
टाल्सटाय की आंखों से आंसू बह रहे हैं। टाल्सटाय ने कहा कि अब तुम देर करके आए, जिसे आत्महत्या करनी थी उसने कर ली है। मैं तो सिर्फ उसके लिए खड़ा होकर रो रहा हूं। वह सिपाही तो घबड़ा गया, वह था ड्यूटी पर तैनात। कौन गिर गया? कब गिर गया? उसने टाल्सटाय से पूछा। लेकिन टाल्सटाय रोए चला जा रहा है। वह टाल्सटाय को पकड़ कर थाने ले गया कि पूरी रिपोर्ट आप लिखवा दें--कौन था? क्या था? रास्ते में टाल्सटाय से उसने पूछा, कौन था? तो टाल्सटाय ने कहा, एक स्त्री थी। नाम बताया, उसकी मां का नाम, उसके पिता का नाम, सब जरूरी सब बताया।

थाने में पहुंचा। थाने में जो इंसपेक्टर था वह पहचानता था। उसने कहा, टाल्सटाय को ले आए! और टाल्सटाय शाही घराने के लोगों में से एक था। उसने टाल्सटाय को पूछा कि क्या कहते हैं आप, कौन मर गया?
थाने में पहुंच कर होश आकर टाल्सटाय ने कहा, क्षमा करना, भूल हो गई। मैं एक उपन्यास लिख रहा हूं। उस उपन्यास में एक पात्रा है। वह पात्रा, आज की रात कहानी वहां पहुंचती है कि वह जाकर वोल्गा में कूद कर आत्महत्या कर लेती है। मैं भूल गया, किताब बंद करके मैं वहां पहुंच गया जहां कहानी में वह आत्महत्या करती है। मैं वहीं खड़ा उसके लिए रोता था कि इस आदमी ने पकड़ लिया।
पर वह सिपाही कहने लगा, तुमने कहा उसके पिता का नाम, मां का नाम।
उसने कहा, वह सब ठीक है, कहानी में वही उसके पिता का नाम है, वही उसकी मां का नाम है।
लेकिन वे सब कहने लगे कि आप आदमी कैसे हैं, आप इतना धोखा खा गए?
टाल्सटाय ने कहा, बहुत बार ऐसा हो चुका है। कल्पना के चित्र इतने सजीव मालूम पड़ते हैं मुझे कि मैं कई बार भूल जाता हूं। बल्कि सच तो यह है कि असली आदमी इतने सजीव नहीं मालूम पड़ते, जितनी मेरी कल्पना के।
टाल्सटाय ने अपना पैर बताया, जिसमें बड़ी चोट थी, निशान था। और उसने कहा कि एक बार मैं लाइब्रेरी की सीढ़ियां चढ़ रहा था। और मेरे साथ एक स्त्री चढ़ रही थी। वह भी मेरी पात्र थी किसी कहानी की, थी नहीं। लेकिन वह उससे बातचीत करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था। संकरी जगह थी, और ऊपर से एक सज्जन उतर रहे थे। मैंने सोचा कहीं स्त्री को धक्का न लग जाए, तो मैं बचा। बचने की कोशिश में उन सीढ़ियों से नीचे गिर गया। जब सीढ़ियों से नीचे गिर गया, उन सज्जन ने मुझसे आकर कहा, पागल हो गए हो? क्यों बचे तुम? दो के लायक काफी जगह थी! टाल्सटाय ने कहा, वह तो अब मुझे भी समझ में आ गया कि दो थे, पैर टूटने
से बुद्धि आई। लेकिन जब तक मैं चढ़ रहा था, मुझे खयाल था हम तीन हैं, एक औरत मेरे साथ है। और उसको धक्का न लग जाए, इसलिए मैंने बचने की कोशिश की।
अब ऐसे व्यक्तियों को भगवान का साक्षात्कार करना कितना सरल हो सकता है। कवि हृदय चाहिए, कल्पनाशील मन चाहिए। और फिर ऐसी तरकीबें हैं कि कल्पनाशील मन को और कल्पनाशील बनाया जा सकता है। जैसे उपवास करके! अगर लंबा उपवास किया जाए, तो मन और भी कल्पना-प्रवीण, इमेजिनेटिव हो जाता है। कभी आपको अगर बुखार में लंघन करनी पड़ी हो तो आपको पता होगा कि अगर लंबी लंघन करनी पड़ी हो, भूखा रहना पड़ा हो बुखार में, कमजोरी बढ़ गई हो, भूख से रहना पड़ा हो--तो कभी खाट आकाश में उड़ती हुई मालूम पड़ेगी, कभी देवी-देवता दिखेंगे, कभी भूत-प्रेत, वे सब साथ दिखाई पड़ेंगे।
वह कमजोर चित्त को बहुत आसान है। इसीलिए लोग लंबे उपवास करके चित्त
को कमजोर करते हैं कि जो भी कल्पना करना चाहें वे कर सकें। लंबे उपवासों के द्वारा और कुछ भी नहीं होता, सिवाय इसके कि चित्त कमजोर होता है। और कमजोर चित्त तर्क करने में असमर्थ हो जाता है। कमजोर चित्त जांचने में कमजोर हो जाता है कि क्या सही है, क्या झूठ है। कमजोर चित्त सपना देखने में सरल हो जाता है। और फिर जो भी आपकी कल्पना हो वह देखा जा सकता है।
उपवास करिए और एकांत में चले जाइए। एकांत में जाना भी कल्पना के लिए बड़ा सहयोगी है। कभी खयाल किया है, अकेले जंगल में गुजर रहे हों तो पत्ता भी खड़कता है तो लगता है कौन आ गया! अंधेरी रात में अकेले हों तो जरा सी चोट, आवाज होती है, और लगता है कि कोई आ गया! भूत-प्रेत दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। जिस ढंग से भूत-प्रेत दिखते हैं, उसी ढंग से भगवान भी देखे जाते हैं, फर्क ज्यादा नहीं है। एकांत में चित्त संवेदनशील हो जाता है। भीड़ में चित्त उतना संवेदनशील नहीं होता, क्योंकि चारों तरफ लोग हैं और उनकी मौजूदगी आपके चित्त को ज्यादा संवेदनशील नहीं होने देती। लेकिन एकांत में चले जाइए, जंगल में चले जाइए, हिमालय पर चले जाइए। फिर वहां जो भी कल्पना करनी हो वह आप कर सकते हैं।
और फिर तीसरी विधि है कि खुद को आत्म-सम्मोहित करिए। रखिए कृष्ण की मूर्ति सामने और उसको ही देखिए, उसके साथ ही जागिए, उसके साथ ही सोइए, उससे बातें करिए, हाथ जोड़िए, प्रार्थना करिए। ऐसा वर्षों तक करते रहिए, करते

रहिए। मन उस मूर्ति को पकड़ लेगा। फिर जो मन मूर्ति को पकड़ लेता है, फिर वह उस मूर्ति को बाहर प्रोजेक्ट भी करता है, वह उसको बाहर निर्मित भी करता है। उसी का दर्शन हो जाएगा। उसको चाहें तो भगवान का दर्शन कह लें। लेकिन इसे मैं भगवान का दर्शन नहीं कहता हूं।
मेरी समझ में भगवान कोई व्यक्ति नहीं है कि जिसका दर्शन हो सके। भगवान है जीवन की समग्र शक्ति का नाम। भगवान है अस्तित्व का नाम। भगवान है होने का नाम। जो भी है वही है। लेकिन उसे जानने का जो मार्ग है वह देखना नहीं है, उसे जानने का मार्ग अनुभव करना है। देखते हम उसे हैं जो अन्य है, अनुभव हम उसे करते हैं जो हम स्वयं हैं। अन्य को देखा जा सकता है। लेकिन अन्य के और स्वयं के बीच में सदा फासला है, दूरी है।
मैं आपको देख रहा हूं, तो आपके और मेरे बीच एक दूरी है। देखने में सदा दूरी है। देखने में कभी भी निकटता नहीं होती। चाहे हम कितने ही निकट खड़े हो जाएं, देखने में दूरी है, दर्शन में फासला है, डिस्टेंस है। और परमात्मा को दूरी से नहीं जाना जा सकता, परमात्मा को तो उसके साथ एक होकर ही जाना जा सकता है।
इसलिए परमात्मा का दर्शन नहीं होता, अनुभूति होती है। और अनुभूति का मतलब? आपने कभी दर्द का दर्शन किया है? पैर में चोट लगी है, उसका आपने कभी दर्शन किया है? नहीं; उसकी अनुभूति की है, दर्शन कभी नहीं किया। आपने कभी प्रेम का दर्शन किया है? प्रेम की अनुभूति की है, दर्शन कभी नहीं किया। जितने गहरे में कोई बात होगी, जितने निकट होगी, उसका हम अनुभव करते हैं। और परमात्मा सर्वाधिक निकट है, हम परमात्मा में ही हैं, परमात्मा ही हैं। इसलिए परमात्मा का कोई दर्शन नहीं होता, अनुभूति होती है।
और अनुभूति तभी होती है जब मेरा यह खयाल मिट जाए कि मैं हूं। क्योंकि
यह मैं अनुभूति में सबसे बड़ी बाधा है। जब यह मैं मिट जाता है और परम शांति होती है भीतर... क्योंकि जब तक मैं है, तब तक शांति नहीं। मैं के अतिरिक्त और कोई अशांति नहीं है, मैं ही अशांति का सूत्र है। जितने जोर से मैं, और मैं, और मैं चल रहा है, उतना ही चित्त अशांत है। जिस दिन मैं शांत हो जाता है, उस दिन हम उसे जान पाते हैं जो भीतर छिपा है। इस भीतर जो छिपा है, उसे जानना ही परमात्मा का अनुभव है। निश्चित ही, जो अपने भीतर इसे जान लेता है, वह यह भी जान लेता है कि वही फैला है सब में। लेकिन वह भी दर्शन नहीं है, वह भी भीतर से ही अनुभव है।
जैसे कोई वृक्ष का एक पत्ता हवा में हिल रहा है। शायद वह पत्ता समझता
हो कि मैं हूं। और शायद वह पत्ता यह भी सोचता हो कि उसके निकट के पत्ते अन्य हैं, भिन्न हैं, दूसरे हैं। क्योंकि उस पत्ते को वे पत्ते दिखाई पड़ रहे हैं। सोचता होगा ये अन्य हैं, दूसरे हैं, इनके और मेरे बीच फासला है। निश्चित ही एक पत्ते में और उसी वृक्ष के दूसरे पत्ते में फासला है। वह पत्ता कहता होगा, मैं मैं हूं, तू तू है।
लेकिन पत्ता अगर अपने भीतर प्रवेश करे थोड़ा, तो अपने भीतर प्रवेश करने से वह शाखा में प्रवेश कर जाएगा, जिसमें सारे पत्ते जुड़े हैं। और तब वह जानेगा, अरे, मैं सोचता था मैं मैं हूं! मैं मैं नहीं हूं, यह पूरी शाखा मैं हूं, ये सारे पत्ते मैं हूं। और अगर और भीतर प्रवेश करे, तो पता चलेगा, नीचे की जड़ पर सारी शाखाएं भी जुड़ी हैं! तब वह समझेगा कि न केवल मैं, मैं और पत्ते, और शाखा; दूसरी शाखाएं भी मैं हूं। और अगर वह और नीचे प्रवेश करे, तो पाएगा कि जड़ें पृथ्वी से जुड़ी हैं। और पृथ्वी के बिना जड़ें नहीं हो सकती हैं। तब शायद वह समझे कि पृथ्वी भी मैं हूं। और जिस पृथ्वी से मेरा वृक्ष जुड़ा है, उसी से दूसरे वृक्ष भी जुड़े हैं। तब वह शायद समझे कि सारे वृक्ष मैं हूं। और अगर वह गहरे से गहरा प्रवेश करता जाए, तो शायद उसे पता चलेः सूरज अगर डूब जाए, अस्त हो जाए सदा के लिए, तो वृक्ष भी नष्ट हो जाएगा। सूरज की किरणों से बंधा है वृक्ष। तब शायद वह जाने कि सूरज भी मैं हूं। और अगर वह इस तरह प्रवेश करता ही चला जाए, करता ही चला जाए, तो एक पत्ता यह जानेगा कि ब्रह्मांड मैं हूं। क्योंकि इस पूरे जगत में, उस पत्ते के होने के लिए सारे जगत की जरूरत है। अगर यह सारे जगत में कुछ भी कमी हो तो वह पत्ता नहीं हो सकेगा। एक पत्ता है, क्योंकि पूरा ब्रह्मांड है।

लेकिन यह पत्ता जितने भीतर प्रवेश करे, उतना ही पता चलेगा। बाहर देखे
तो यह कभी पता नहीं चलेगा। पता चलेगाः दूसरे पत्ते दूसरे हैं, दूसरे वृक्ष दूसरे हैं। कहां चांद-तारे! कहां सूरज! यह सब फासला है। बाहर से देखने पर फासला है, भीतर से देखने पर फासला मिट जाता है। क्योंकि भीतर से सब जुड़ा है।
अपने भीतर उतर कर स्वयं को जान लेने से ही परमात्मा के जानने का द्वार खुलता है। इसलिए यह मत पूछिए कि मैंने कभी परमात्मा को देखा या नहीं देखा। किसी ने कभी नहीं देखा। हां, जाना है। और जान कोई भी सकता है। क्योंकि हम वही हैं। जानने के लिए कहीं दूर नहीं जाना है--किसी तीर्थ नहीं, किसी मंदिर नहीं, किसी हिमालय पर नहीं। जानने के लिए जाना है अपने ही भीतर।
एक छोटी सी कहानी, फिर मैं दूसरा प्रश्न लूं।
मैंने सुना है कि जब सृष्टि बनी और ईश्वर ने सारी चीजें बनाईं, बड़ी अदभुत कहानी है। और जब उसने आदमी बनाया, तो वह अपने देवताओं से पूछने लगा कि यह आदमी मुझे बड़ा शिकायती मालूम पड़ता है। यह बन तो गया, लेकिन यह छोटी- छोटी शिकायत लेकर मेरे द्वार पर खड़ा हो जाएगा। मैंने वृक्ष बनाए, वृक्ष कभी शिकायत लेकर नहीं आए, न वृक्षों ने कभी प्रार्थना की और न शिकायत की। मैंने पशु बनाए, पशु कभी मेरे द्वार पर नहीं आए। पक्षी बनाए, कभी पक्षी मेरे द्वार पर नहीं आए। चांद-तारे बनाए। लेकिन यह आदमी मुसीबत का घर है। यह सुबह-शाम चौबीस घंटे द्वार पर दस्तक देगा, कहेगा कि यह करो, यह करो; यह होना चाहिए, वह नहीं होना चाहिए। इस आदमी से बचने का मुझे कोई उपाय चाहिए।
मैं कहां छिप जाऊं?
तो किसी देवता ने कहा, हिमालय पर छिप जाइए।
तो उसने कहा, तुम्हें पता नहीं है, बहुत जल्द वह वक्त आएगा कि हिलेरी
और तेनसिंग हिमालय पर चढ़ जाएंगे।
तो किसी ने कहा, पैसिफिक महासागर में छिप जाइए।
तो उसने कहा, वह भी कुछ काम नहीं चलेगा। जल्दी ही अमेरिकी वैज्ञानिक वहां भी उतर जाएंगे।
किसी ने कहा, चांद-तारे पर बैठ जाइए।
उसने कहा, उससे भी कुछ होने वाला नहीं है। जरा ही समय बीतेगा और चांद-तारों पर आदमी पहुंच जाएगा।
तब एक बूढ़े देवता ने उसके कान में कहा, एक ही रास्ता है, आप आदमी के भीतर छिप जाइए। वहां आदमी कभी नहीं जाएगा।
और ईश्वर ने बात मान ली और आदमी के भीतर छिप गया। और आदमी हिमालय पर भी पहुंच गया, चांद-तारों पर भी पहुंच जाएगा, पैसिफिक में भी पहुंच गया। एक जगह भर छूट गई है जहां आदमी नहीं पहुंचता, वह खुद के भीतर।
और धार्मिक आदमी भी कहता है, ईश्वर कहां है? यह सवाल ही अधार्मिक है।
और धार्मिक आदमी भी कहता है, ईश्वर के दर्शन कैसे करूं? यह सवाल ही नास्तिक का है। आस्तिक यह पूछता ही नहीं। आस्तिक यह पूछता है, मैं कौन हूं? और जिस दिन जान लेता है, उस दिन जान लेता है कि मैं नहीं हूं, परमात्मा है।
लेकिन नास्तिक भी आस्तिकों की शक्लों में बैठे हुए हैं। मंदिर में मूर्ति बनाते हैं। ये सारी मूर्तियां नास्तिकों ने बनाई हैं। कोई आस्तिक कभी परमात्मा की मूर्ति नहीं बना सकता। क्योंकि आस्तिक जानता है कि उसकी मूर्ति बन ही नहीं सकती। कोई आस्तिक कभी परमात्मा की न मूर्ति बना सकता है और न कोई आस्तिक परमात्मा की मूर्ति कभी तोड़ सकता है। क्योंकि वे दोनों नासमझियां हैं।
लेकिन दो तरह के आस्तिक हैं दुनिया मेंः एक मूर्ति बनाने वाले, एक मूर्ति तोड़ने वाले। लेकिन दोनों मूर्ति को मानते बहुत हैं। एक पूजने के लिए मानता है, एक तोड़ने के लिए मानता है। लेकिन दोनों मूर्ति से बेचैन बहुत होते हैं। ये सब नास्तिकों की कतारें हैं, जो भूल से अपने को आस्तिक समझ रहे हैं।
आस्तिक वह है जो कहता है, सभी मूर्तियां उसकी हैं। इसलिए उसकी मूर्ति बनाने की और क्या जरूरत है? इतनी मूर्तियों में वह नहीं दिखाई पड़ता, तुम

और एक बना कर पत्थर की बिठा कर उसको देखोगे। सब कुछ वही है। तो आस्तिक मंदिर नहीं बना सकता; क्योंकि मंदिर नास्तिकता का सबूत है। नास्तिक मंदिर बनाएगा, वह कहेगा, यहां भगवान है। यहां भगवान का मतलब होता है, और शेष सब जगह नहीं है। जो आस्तिक है वह कहता है, जो भी है मंदिर है। जो आस्तिक है वह कहता है, कण-कण तीर्थ है। जो आस्तिक है वह कहता है, वही है, उसके सिवाय कुछ भी नहीं है।
और लेकिन यह कहने वाले का मतलब यह नहीं है कि कहीं अंधेरे में भगवान
से उसका मिलना हो गया है। कहीं नमस्कार, जोड़ कर हाथ नमस्कार हो रही है। ऐसा कुछ भी नहीं है। इसका कुल मतलब इतना है कि वह अपने भीतर उतरा है, और मैं मिट गया है, और वह द्वार खुल गया है जहां से संपूर्ण अस्तित्व का साक्षात्कार हो जाता है।
परमात्मा का अर्थ हैः अस्तित्व का साक्षात्कार। परमात्मा का साक्षात्कार नहीं; अस्तित्व का! और अस्तित्व का साक्षात्कार दर्शन नहीं है, अस्तित्व का साक्षात्कार अनुभूति है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आजकल समाज नीचे गिरता जा रहा है, अनैतिक होता चला जा रहा है, अनाचार बढ़ रहा है, भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। तो इस समाज को ऊंचा उठाने के लिए क्या किया जाए?

इसमें दो-तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
पहली तो बातः यह गलत है कहना कि आजकल समाज नीचे गिरता जा रहा है। इससे ऐसा भ्रम पैदा होता है कि पहले समाज ऊंचा था। समाज ऊंचा कभी नहीं था। कभी नहीं रहा। और यह ध्यान रहे, ऊंचाई से नीचे की तरफ जाना होता ही नहीं है। ऊंचाई से नीचे की तरफ जाने जैसी घटना घटती ही नहीं है। हां, धोखे की ऊंचाई हो, तो हो जाता है। कोई मनुष्य कभी भी ऊंचाई से नीचाई की तरफ नहीं जाता है। हां, धोखे की ऊंचाई हो, तो हो सकता है। और जब कोई नीचे चला जाए तो समझ लेना चाहिए--जिसे हमने ऊंचाई समझी थी वह ऊंचाई नहीं थी, सिर्फ धोखा था।
तो पहली तो बात यह कि मनुष्य का समाज कभी भी ऊंचा नहीं रहा। कुछ मनुष्य ऊंचे रहे हैं, समाज कभी ऊंचा नहीं रहा। कुछ मनुष्यों की ऊंचाई के कारण हमें यह भ्रम पैदा हुआ कि सारा समाज ऊंचा हो गया।
इस भ्रम का टूट जाना उचित है, तो ही हम समाज को ऊंचा करने का रास्ता खोज सकते हैं। और अगर हम यह मानते रहें कि पहले समाज ऊंचा था, अब नीचे हो गया, तो चूंकि यह मानना ही बुनियादी रूप से गलत है, इसके आधार पर हम जो भी करेंगे, वह गलत होगा।
होता क्या है, इतिहास में बड़ी भूलें हो जाती हैं। और बुनियादी भूलें
हो जाती हैं, जिनका फिर पता भी नहीं चलता। जैसे अभी, इन पचास सालों में हिंदुस्तान में जितने लोग पैदा हुए, इनमें से गांधी का नाम हजारों साल तक याद रहेगा। पांच हजार साल भी गांधी का नाम शेष रहेगा। न मुझे कोई याद करेगा, न आपको, न इन पचास वर्षों में जितने लोग पैदा हुए किसी की याद रह जाएगी। लेकिन गांधी का नाम टिकेगा, बचेगा। पांच हजार साल बाद लोग कहेंगे कि गांधी जैसा आदमी जिस जमाने में पैदा हुआ, वह जमाना कितना ऊंचा था! कितने ऊंचे लोग थे! गांधी के आधार पर हम सब के संबंध में वे सोचेंगे और कहेंगे, कितने ऊंचे लोग थे! हम तो मिट जाएंगे, धूल हो जाएंगे। गांधी का नाम रह जाएगा, गांधी मापदंड बन जाएंगे।
और गांधी और हममें कोई भी संबंध नहीं, हम बिल्कुल उलटे आदमी हैं। गांधी से हमारा क्या लेना-देना! लेकिन गांधी हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं, वे हमारे रिप्रेजेंटेटिव भी नहीं हैं। सच तो बात यह है कि गांधी हमारे बिल्कुल ही उलटे प्रतिनिधि हैं, जैसे हम नहीं हैं वैसे वे हैं। लेकिन वे हमारे प्रतिनिधि बन कर इतिहास में याद रह जाएंगे। हम तो भूल जाएंगे, वे याद रह जाएंगे। और पांच हजार साल बाद लोग कहेंगे, गांधी का युग कितना अदभुत था! गांधी को देख कर वे सोचेंगे हमारे बाबत। वह सोचना बिल्कुल झूठा होगा।

ऐसे ही राम की याद रह गई है, बुद्ध की याद रह गई है, महावीर की याद रह गई है। उस जमाने के लोग भूल गए हैं। राम को देख कर हम कहते हैं, आह! कैसे अदभुत लोग थे! राम का युग, राम-राज्य!
झूठी हैं ये बातें। आदमी नहीं था बड़ा; कुछ आदमी बड़े हुए हैं इतिहास में, समाज बड़ा नहीं हो पाया। और कुछ आदमी चमकते हुए सितारों की तरह दिखाई पड़ते हैं पीछे और हम उनके आधार पर पूरे जमाने को चमकता हुआ मान लेते हैं। यहां बिल्कुल भूल हो जाती है। बल्कि सच्चाई तो यह है कि अगर समाज बहुत बड़ा हो तो महापुरुष पैदा ही नहीं हो सकते हैं, महापुरुष हमेशा छोटे समाज में पैदा होते हैं।
जैसे स्कूल का शिक्षक होता है, वह काले बोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखता है, सफेद दीवाल पर नहीं लिखता। क्योंकि सफेद दीवाल पर लिख तो सकते हो, लेकिन दिखाई नहीं पड़ेगा। सफेद दीवाल है तो सफेद खड़िया का लिखा हुआ दिखाई कैसे पड़ेगा? सफेद खड़िया चमक कर दिखाई पड़ती है काले बोर्ड पर।
समाज जितना काला होता है, महापुरुष उतने ही चमकते हुए दिखाई पड़ते हैं। अगर समाज महान हो तो महापुरुष का पता लगाना मुश्किल है। असंभव है। बिल्कुल असंभव है। अगर गांधी जैसे सौ, दो सौ लोग भी मौजूद हों, तो मोहनदास करमचंद गांधी कहां पैदा हुए, कोई फिकर करेगा पोरबंदर की? खो जाएंगे। लेकिन नहीं खोते हैं, क्योंकि पूरा समाज हीन है। और उस हीन काले तख्ते पर जरा सी भी चमकती हुई लकीर हजारों वर्ष तक दिखाई पड़ती रहेगी।
अगर हम पीछे लौट कर देखें, दस-बीस नाम याद आते हैं। वह क्यों? क्योंकि समाज बिल्कुल काले तख्ते की तरह साबित हुआ है। उसमें वे चमकते हुए नाम दिखाई पड़ते रहते हैं। और फिर उन चमकते हुए नामों के अनुसार हम पूरे समाज का निर्णय लेते हैं, जो कि बिल्कुल ही इल्लाजिकल है, बिल्कुल तर्कशून्य है। महापुरुष पैदा हुए हैं, महान समाज पैदा नहीं हुआ। और यह भी ध्यान रहे, जिस दिन महान समाज पैदा होगा, उस दिन महापुरुष इतनी आसानी से नहीं पहचाने जा सकेंगे।
दूसरी बातः अतीत, बीता हुआ, जो हो चुका, उसके दुखद स्मरण तो भूल जाते हैं, सुखद स्मरण शेष रह जाते हैं। अगर आप अपनी जिंदगी में लौट कर देखें, तो आपको दुखद बातें तो भूल गईं--भूल क्या गईं, आपने कोशिश करके उनको भुलाया भी है--सुखद बातें याद रह गईं।
यह बहुत मजेदार बात है मनुष्य के चित्त की कि जब दुख बीतता है तो दुख बहुत गहरा होकर दिखाई पड़ता है, और जब सुख बीतता है तो सुख का पता भी नहीं चलता। सुख मौजूद जब होता है तो पता नहीं चलता; दुख जब मौजूद होता है तो पता चलता है। और जब दुख बीत जाता है तो भूल जाता है; और जब सुख बीत जाता है तो याद रह जाता है। सुख को हम संजो कर रख लेते हैं अपने मन में कि ये-ये सुख की बातें घटी हैं जिंदगी में। और उन्हीं की याद करते रहते हैं। दुख को विस्मरण कर देते हैं, सुख को याद करते हैं। इसलिए पीछे लौट कर देखने पर ऐसा लगता है कि जिंदगी बड़ी सुखद थी। जब गुजरे थे उसी वक्त से तो इतना सुखद नहीं था
एक छोटे से बच्चे से पूछो कि बचपन कितना सुखद है? बच्चे बहुत जल्दी जवान हो जाना चाहते हैं, बचपन से छुटकारा चाहते हैं। लेकिन बूढ़े कहते हैं, बचपन बड़ा सुखद था। बच्चे बहुत जल्दी में रहते हैं कि कब जवान हो जाएं। क्योंकि जवान आदमी शानदार दिखाई पड़ता है। बच्चों को कोई भी सुख नहीं है। स्कूल में शिक्षक डांटता है, घर में मां पीछे पड़ी है, बाप पीछे पड़ा है, जिंदगी एक मुसीबत है, परीक्षा है, यह है, वह है, सब है। कोई सुख नहीं है बच्चे को। लेकिन बूढ़े आदमी को बचपन के सुख याद आते हैं। बच्चे को बिल्कुल नहीं मालूम पड़ते कि कोई सुख हैं। कोई बच्चा नहीं कहेगा कि मैं सुखी हूं। लेकिन सब बूढ़े कहते हैं कि जब मैं बच्चा था तो बहुत सुखी था।
यह तथ्यगत नहीं है, यह फैक्चुअल नहीं है, यह सच्चाई नहीं है। जब जिंदगी गुजरती है तो दुखपूर्ण मालूम पड़ती है; जब बीत जाते हैं दिन तो सुख की सौरभ बाकी रह जाती है, दुख भूल जाते हैं। बस सुख की कथा याद रह जाती है। और जो व्यक्ति के साथ होता है वही समाज के साथ होता है। अतीत स्वर्णयुग मालूम पड़ता है। बहुत सुंदर था जो बीत गया, जो है वह दुखद मालूम पड़ता है। हर

पीढ़ी यह कहती है कि अब जमाना बिगड़ गया, पहले जमाना अच्छा था। पिछली पीढ़ी भी यही कहती थी। उससे पिछली पीढ़ी भी यही कहती थी। लौटते चले जाओ पीछे, हमेशा हर पीढ़ी ने यह कहा है कि वह जमाना और था जो हमने देखा है, अब सब बिगड़ गया। और आप हैरान होंगे, दुनिया में एक भी किताब ऐसी नहीं है जिसमें यह लिखा हो कि आजकल का जमाना ठीक है। हर किताब में यह लिखा है कि पहले का जमाना ठीक था। पुरानी से पुरानी किताब में भी यही लिखा हुआ है। चीन में छह हजार वर्ष पुरानी किताब मिली है। उस किताब की भूमिका में लिखा है कि धन्य हैं वे लोग जो पहले हुए, अब तो जमाना बिगड़ गया।
छह हजार साल पुरानी किताब भी यही कहती है कि पहले सब अच्छा था, अब बिगड़ गया! यह पहले कब था? यह था भी कि यह साइकोलाजिकल इल्यूजन है? यह कोई मानसिक धोखा है कि कभी था पहले का युग? प्राचीन से प्राचीन ग्रंथ भी और पहले की बात करते हैं, कि और पहले सब ठीक था।
नहीं; इसमें मानसिक भ्रम है। याददाश्त गुजरते-गुजरते सुखद बाकी रह जाती है, दुखद भूल जाता है। फिर उस सुख को ही संजो कर हम बैठ जाते हैं, वह हमारी धरोहर बन जाती है। बस वह हमारे चित्त की संपत्ति हो जाती है, फिर उसी को हम संजोते रहते हैं। और फिर यह जो भाव बन जाए भीतर, तो फिर जो भी मौजूद है वह बुरा दिखाई पड़ने लगता है। वह उतना बुरा नहीं होता जितना दिखाई पड़ता है। वह जो स्मृति का हमने सुख बना रखा है, उसकी तुलना में बुरा दिखाई पड़ने लगता है।
तो पहली तो बात यह समझ लेनी जरूरी है कि दुनिया कभी अच्छी थी, समाज अच्छा था, यह भ्रम है। और यह समझ लेना इसलिए जरूरी है कि अगर समाज को अच्छा बनाना है तो पुरानी कोई तरकीबें काम नहीं करेंगी, क्योंकि वे तरकीबें काम में लाई जा चुकीं और समाज अच्छा नहीं हो सका।
जैसा गांधी जी कहते हैं कि राम-राज्य ले आओ। यह पीछे लौट चलने की दलील है। पीछे लौट चलने से कोई हित नहीं है। अगर राम-राज्य अच्छा होता तो हम आगे आते ही नहीं, हम वहीं रुक जाते। वह अच्छा नहीं था, उसे छोड़ना पड़ा। वह छूटा, उससे हम पार हो गए। आगे जा सकते हैं हम, पीछे नहीं लौट सकते। आगे ही जाने का उपाय है, पीछे लौटने का उपाय भी नहीं है। लेकिन जो लोग यह मान लेते हैं कि पहले अच्छा था, बस फिर वे निश्चिंतता से पहले के गुणगान करने लगते हैं। और कहते हैं कि पहले जैसा समाज बनाओ, वर्ण बनाओ, आश्रम बनाओ। पहले जैसा ब्राह्मण को आदर दो, पहले जैसे मां-बाप की पूजा करो, अतिथि को देवता समझो, पहले जैसा सब करो। तो फिर समाज अच्छा हो जाएगा।
जब वह सब किया जाता था, तब भी समाज अच्छा नहीं था। समाज अच्छा था ही नहीं आज तक! क्योंकि समाज कैसे अच्छा हो, इसके सूत्र ही नहीं खोजे जा सके। लेकिन आगे समाज अच्छा हो सकता है। मेरी दृष्टि पीछे की तरफ नहीं, आगे की तरफ है। मैं आप से यह कहता हूं, आगे समाज अच्छा हो सकता है। लेकिन उसके लिए हमें बुनियादी चिंतन करना पड़ेगा।
हमारे चिंतन की प्रक्रिया ही झूठी और असत्य पर खड़ी है।
जैसेः हम कहते हैं, चोरी है; और हम चोरी को गाली देते हैं और चोरी बढ़ती
जा रही है। लेकिन कोई भी यह नहीं कहता कि चोरी समाज में क्यों है? और ऐसा कोई जमाना था जब चोरी नहीं थी?
कोई जमाना ऐसा नहीं था। क्योंकि अगर ऐसा कोई जमाना होता तो पुराने से पुराने शिक्षक और तीर्थंकर और अवतार लोगों को समझाते हैं कि चोरी करना पाप है, चोरी मत करना। किसको समझाते हैं? बुद्ध यही समझाते हैं, महावीर यही समझाते हैं, जीसस यही समझाते हैं--चोरी मत करना, चोरी पाप है। क्या उन लोगों को समझाते हैं जो चोरी करते ही नहीं थे? इनका दिमाग खराब था? यह चोरों को ही समझाने वाली बात है कि चोरी मत करना। और जब सुबह से शाम तक यही- यही समझाते हैं, तो इसका मतलब साफ है कि चोर काफी रहे होंगे। नहीं तो एकाध दफे कहते, मामला खतम हो जाता।
अगर बुद्ध के वचन उठा कर देखें, तो एक दिन ऐसा नहीं जिस दिन वे न समझाते हों कि चोरी मत करो, हिंसा मत करो, दूसरी स्त्री की तरफ बुरी नजर से मत देखो। ये सारी की सारी बातें रोज--झूठ मत बोलो, बेईमानी मत करो,

भ्रष्टाचार मत करो--ये ही सब समझा रहे हैं बुद्ध सुबह से लेकर शाम तक। किसको समझा रहे हैं?
ये उपदेश बताते हैं कि चोरों का समाज था, झूठ बोलने वालों का समाज था, बेईमानों का समाज था। बुद्ध उसी के बीच भ्रमण कर रहे हैं, उसी को समझाते फिर रहे हैं। नहीं तो कोई भी कह देता कि महाराज, हम करते ही नहीं, आप यह क्यों बकवास जारी किए हुए हैं? यह बंद करिए! चालीस साल बुद्ध सुबह से सांझ तक यही समझा रहे हैं। उपदेश बताते हैं कि समाज कैसा था। उपदेश बताते हैं कि समाज कैसा था।
अगर किसी गांव में बहुत डाक्टर हों, तो वे बताते हैं कि उस गांव में उसी अनुपात में मरीज होंगे। डाक्टरों का पता लगा कर गांव की बीमारी का पता चल सकता है, बीमारों को नापने की कोई जरूरत नहीं। जिस गांव में कोई भी डाक्टर न हो, शक होता है कि उस गांव में लोग स्वस्थ होंगे। नहीं तो डाक्टर पैदा हो जाता, बीमार डाक्टर को पैदा कर ही लेते।
पापी हमेशा उपदेशक को पैदा कर लेते हैं। उपदेशक उपदेश नहीं देता, पापी उपदेश करवाते हैं। जब चोरी बढ़ती है तो कोई न कोई कहने लगता है, चोरी बुरी है। समाज हमेशा ऐसा ही रहा है। और ऐसा ही रहेगा, अगर हम बुनियादी बातों को नहीं समझते।
लाओत्से चीन में हुआ एक अदभुत आदमी, कोई ढाई हजार साल पहले। वह एक राज्य का कानून मंत्री बना दिया गया। पहले ही दिन मुकदमा आया, एक आदमी ने चोरी की थी। चोरी पकड़ गई थी और आदमी ने स्वीकार कर लिया कि मैंने चोरी की है, अब लाओत्से को फैसला देना था सजा का। उसने छह महीने की सजा चोर को दे दी और छह महीने की उस साहूकार को जिसके घर चोरी हुई थी।
साहूकार ने कहा, आपका दिमाग दुरुस्त है! कभी सुना है किसी कानून में
कि जिसके घर चोरी हो उसको ही सजा मिले। तब तो हद हो गई!
लाओत्से ने कहा कि जब तक साहूकार को भी सजा नहीं मिलती, तब तक दुनिया
से चोरी बंद नहीं हो सकती। एक आदमी के पास गांव की सारी संपत्ति इकट्ठी हो गई है, चोरी नहीं होगी तो क्या होगा?
अगर एक आदमी के पास गांव की सारी संपत्ति इकट्ठी हो जाए--ऐसा समाज हो
कि एक तरफ संपत्ति इकट्ठी हो जाए, एक तरफ भूख इकट्ठी हो जाए--तो चोरी नहीं होगी तो क्या होगा? लेकिन हम कहते हैं, चोरी नहीं होनी चाहिए। और संपत्ति एक तरफ इकट्ठी होती चली जाए, इसकी कोई फिकर नहीं है। चोरी होगी, चोरी होती रहेगी, चोरी नहीं रुक सकती। अदालत बनाओ, कानून बनाओ, नरक बनाओ, भगवान को कांस्टेबल बना कर बिठाल दो, चोरी जारी रहेगी, चोरी नहीं मिटने वाली। और चोरी रोज बढ़ती जाएगी, क्योंकि संपत्ति एक तरफ इकट्ठी होती चली जाएगी। चोरी व्यक्तिगत संपत्ति के साथ जुड़ी है। इसलिए अगर चोरी को कम करना है, तो संपत्ति उस वर्ग तक भी पहुंचनी चाहिए जहां भूख है, जहां दीनता है, जहां दरिद्रता है। जब तक वहां भी संपत्ति नहीं पहुंच जाती, तब तक चोरी नहीं रुकेगी। अगर चोरी रोकनी है तो धन बढ़ाओ और निर्धन को कम करो। जब तक निर्धनता है, चोरी रहेगी। कितना ही समझाओ, कितना ही सुझाओ, इससे कुछ होने वाला नहीं है।
लेकिन हम बुनियादों को पकड़ना नहीं चाहते। हम एक-एक चोर को सुधारने की कोशिश करते हैं, और पूरे समाज की व्यवस्था चोरी करवाने वाली है। वह पूरी समाज की व्यवस्था नहीं बदलती; तो कुछ लोग हिम्मत करके चोरी न करें, यह हो सकता है। लेकिन कितने लोग हिम्मत जुटाएंगे? कितनी देर तक हिम्मत जुटाएंगे? चोरी जारी हो जाएगी। एक नहीं करेगा, दूसरा करेगा; दूसरा नहीं, तीसरा करेगा।
चोरी खत्म होनी चाहिए, जरूर खत्म होनी चाहिए। लेकिन चोरी है क्यों? चोरी इसलिए है कि संपत्ति कम है। और कम संपत्ति भी कुछ हाथों में केंद्रित हो जाती है और शेष लोग निर्धन छूट जाते हैं।
जीवन के सारे उपद्रव इसी तरह विकसित होते हैं। लेकिन किसी उपद्रव को मिटाने में समाज आज तक समर्थ नहीं हो सका। और नहीं होने का कारण यह है कि हमने उनकी मूल भित्ति को ही चोट नहीं पहुंचाई। हम ऊपर-ऊपर टीम-टाम करते रहे।

लाओत्से को कानून मंत्री का पद छोड़ देना पड़ा। क्योंकि सम्राट ने कहा, तुम्हारा दिमाग खराब है। सारे गांव में चर्चा हुई कि यह आदमी पागल है।
लेकिन मैं आपसे कहता हूं, लाओत्से पागल नहीं था, पूरा गांव पागल था। लाओत्से ने जो कहा था, बुनियादी रूप से सच था। और जिस दिन दुनिया में लाओत्से की बात स्वीकृत हो जाएगी, उसी दिन चोरी खतम हो जाएगी। उसके पहले चोरी खतम नहीं हो सकती।
हां, एक चोर बदला जा सकता है कि दूसरा पैदा हो जाए, इससे कोई अंतर नहीं होता। व्यक्तिगत रूप से एक आदमी इस समाज में भी चोरी से बच सकता है। लेकिन समाज चोरी से नहीं बच सकता।
तो हमें बुनियादी चिंतन करना जरूरी है कि जीवन के ढांचे को हम फिर से सोच लें कि हजारों साल से यह ढांचा चल रहा है, लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ा है। हम आदमी को जो भी समझाते हैं, उस समझाने के पीछे यह ढांचा बदलता है या ढांचा जारी रहता है?
गरीब को हम हजारों साल से समझा रहे हैं कि तुम्हारे पिछले जन्मों के पापों के कारण तुम गरीब हो।
यह सरासर झूठी बात है। कोई आदमी किसी पिछले जन्म के पाप के कारण गरीब नहीं है। गरीब समाज की व्यवस्था के कारण है। और कोई आदमी अमीर नहीं है पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण। समाज की व्यवस्था के कारण अमीर है। लेकिन हम यह समझा रहे हैं हजारों साल से। और इसकी वजह से न गरीबी मिटती है, न धन पैदा होता है। क्योंकि निर्धन अपनी निर्धनता में तृप्त हो जाता है, संतुष्ट हो जाता है कि ठीक है। अब पिछले जन्मों के कर्मों को तो बदला नहीं जा सकता; अब अगले जन्म में जो कुछ कर सकेंगे, कर रहे हैं, वह अगले जन्म में मिलेगा; इस जन्म में मिलने वाला नहीं। निर्धन अपनी निर्धनता को स्वीकार कर लेता है, धनी अपने धन को स्वीकार कर लेता है। समाज के ढांचे में कोई रूपांतरण नहीं होता, चोरी जारी रहती है, झूठ जारी रहता है, बेईमानी जारी रहती है।
दूसरी बात, हमने मनुष्य के सहज स्वभाव को आज तक स्वीकार नहीं किया। और
जब तक मनुष्य का सहज स्वभाव स्वीकार नहीं होता, तब तक दुनिया अच्छी नहीं हो सकती। हम उलटी बातें आदमी को सिखाते हैं। उसमें आदमी बेईमान होता है, ईमानदार नहीं होता। हम आदमी को क्या सिखा रहे हैं? हम उसे उलटी बातें सिखा रहे हैं, जो स्वभाव के प्रतिकूल हैं, जो स्वभाव के अनुकूल नहीं हैं।
जैसे हम कहते हैं कि कितनी कामुकता बढ़ गई! संयम होना चाहिए! एक मित्र
ने प्रश्न भी पूछा है इस संबंध में। वह भी इस संदर्भ में आपको याद दिला दूं।

किसी मित्र ने पूछा है कि गांधी जी संयम पर जोर देते हैं, ब्रह्मचर्य
पर जोर देते हैं। वे कहते हैं, संयम ही जीवन है। आप क्या कहते हैं?

मैं कहता हूं, संयम पाप है, जीवन नहीं। और मैं कहता हूं कि ब्रह्मचर्य
की बातें करना इतना खतरनाक है जिसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन इसको समझ लेना पूरा, तब कोई निर्णय लेना।
संयम बिल्कुल नहीं चाहिए; चाहिए समझ, संयम नहीं। जितनी समझ होगी, संयम अपने आप आएगा, लाना नहीं पड़ेगा। जो संयम अपने आप आता है, वह तो हितकर है। और जो लाना पड़ता है, वह बिल्कुल जहर है और खतरनाक है।
लेकिन अब तक यही सिखाया गया है कि संयम साधो! साधा हुआ संयम पाप है।
साधे हुए संयम का क्या मतलब होता है? साधे हुए संयम का मतलब होता हैः भीतर कुछ है, ऊपर से कुछ पकड़ लो। भीतर कामवासना है, ऊपर से ब्रह्मचर्य का पाठ रखो। भीतर काम चलेगा, सेक्स चलेगा, ऊपर ब्रह्मचर्य की बातें चलेंगी। ब्रह्मचर्य ऊपर रहेगा, भीतर ब्रह्मचर्य से बिल्कुल उलटी आत्मा रहेगी। अगर ब्रह्मचारियों की खोपड़ी खोली जा सके, तो उनके अंदर ब्रह्मचर्य बिल्कुल नहीं मिलेगा। मिल ही नहीं सकता। वहां भीतर वही मिलेगा जो उन्होंने सप्रेस किया है, दबाया है। अगर ब्रह्मचारियों के सपने जाने जा सकें... ।

और अब जानने का उपाय हो गया है, इसलिए ब्रह्मचारियों को अब सावधान हो जाना चाहिए। अब उन्होंने व्यवस्था कर ली है कि सपने पकड़े जा सकते हैं। अब रात मशीन लगा कर सपने टेप किए जा सकते हैं कि सपने में क्या हो रहा है! उसके सब सिंबल्स पकड़े जा सकते हैं। क्योंकि मस्तिष्क पूरे वक्त चलता है। और चलने से पता चल गया है कि जब सेक्स का मन में विचार चलता है, तो धमनियां किस तरह धड़कती हैं। वह धमनियों की धड़कन कागज पर आ जाती है और पता चल जाता है कि भीतर क्या चल रहा है। अब बहुत दिन यह धोखा नहीं चल सकता कि भीतर कुछ चलता रहे और ऊपर आप कुछ चलाते रहें।
ब्रह्मचर्य आता है। वह बात दूसरी है। उसके लिए कभी नहीं कोई संयम साधना पड़ता। वह आता है सेक्स की अंडरस्टैंडिंग से, दमन से नहीं। जो आदमी अपनी कामवासना को जितना समझ लेता है, उतना ही मुक्त हो जाता है। लेकिन ब्रह्मचर्य लाना नहीं पड़ता; लानी पड़ती है सेक्स की समझ। जितनी सेक्स की वृत्ति की समझ बढ़ती है, बोध बढ़ता है, ज्ञान बढ़ता है, उतना ही ब्रह्मचर्य फलित होता है। ब्रह्मचर्य लाना नहीं पड़ता; आता है। जैसे आदमी चलता है और पीछे छाया आती है; ऐसे ही जितना आंतरिक जीवन का ज्ञान और बोध बढ़ता है, उतना ही ब्रह्मचर्य आता है।
लेकिन वह बात अलग है, आया हुआ संयम बात अलग है। हमें जो सिखाया गया है हजारों साल से वह लाया हुआ संयम है। वे कहते हैं कि दबाओ हिंसा को, और अहिंसक बनो। वे कहते हैं, दबाओ वासना को, वासना पाप है। इच्छा को दबाओ, परिग्रह को दबाओ, धन को दबाओ, लोभ को दबाओ, क्रोध को दबाओ, सबको दबा लो। जिसको दबाओगे वह भीतर बैठ जाएगा। ऊपर कपड़े सफेद होंगे, भीतर आदमी काला बैठ जाएगा। और वह काला आदमी प्राण लेगा, वह पूरे वक्त सताएगा। और इसीलिए अक्सर यह होता है--आपने देखा होगा, धार्मिक आदमी को अगर गौर से देखें तो उसके व्यक्तित्व में पाखंड दिखाई पड़ेगा, उसके व्यक्तित्व में हिपोक्रेसी दिखाई पड़ेगी। ऊपर से कुछ होगा, भीतर से बिल्कुल दूसरा आदमी होगा। उसके व्यक्तित्व में द्वैत मालूम पड़ेगा। एक उसका व्यक्तित्व होगा, जैसा वह दिखाई पड़ता है; एक उसका व्यक्तित्व होगा, जैसा वह है। और वह भी जानता है। लेकिन फिर वह उलटे रास्ते अख्तियार करेगा। वह पीछे के रास्ते अख्तियार करेगा। और उन पीछे के रास्तों पर उसकी गति चलेगी।
यहां वह कहेगा कि लोभ? लोभ पाप है, लोभ ठीक नहीं है। लेकिन अगर उसके चित्त की दशा समझें, तो लोभी की होगी। वह दिन-रात चिंता करेगा कि स्वर्ग कैसे मिल जाए? मोक्ष कैसे मिल जाए? ये भी लोभ के ही रूप हैं। क्या चाहते हो स्वर्ग में? क्या जरूरत है स्वर्ग के पाने की? यह ग्रीड यहां दबा ली, वहां निकलनी शुरू हो गई। यहां वह कहेगा कि स्त्रियों से दूर रहना! और स्वर्ग में इंतजाम करेगा अप्सराओं का। ये स्वर्ग की अप्सराओं की जरूरत क्या है? ये किस दिमाग से निकलती हैं स्वर्ग की अप्सराएं?
और आपको पता नहीं होगा शायद, यहां जमीन पर जो स्त्रियां हैं, वे तो बेचारी जवान भी होती हैं और बूढ़ी भी हो जाती हैं। स्वर्ग की अप्सराएं कभी बूढ़ी नहीं होतीं, सोलह साल पर उनकी उम्र रुक जाती है, उसके आगे नहीं जाती। सोलह के ऊपर अगर किसी स्त्री की चाहना-वाहना हो, स्वर्ग मत जाना। वहां सोलह के ऊपर कोई स्त्री होती नहीं, बस सोलह पर ठहर जाती है।
ये कौन लोग शास्त्र लिख रहे हैं स्वर्गों का? इनके दिमाग में क्या है?
ये किस बात की सबूत हैं इनकी कल्पनाएं? वहां कल्पवृक्ष बनाए हैं, जिनके नीचे बैठ जाइए और जो भी कामना करिए पूरी हो जाती है। और यहां वे कहते हैं, कामना छोड़िए, कामना छोड़ने से स्वर्ग मिलेगा। स्वर्ग में कल्पवृक्ष हैं, जिनके नीचे बैठने से सब कामनाएं पूरी हो जाती हैं। यह क्या सर्किल है? यह क्या चक्कर है? यह दिमाग कैसा है? यह धोखा किसको दिया जा रहा है?
दिमाग यहां जिसको दबाता है, आगे पाने का इंतजाम कर रहा है। जो-जो यहां छोड़ता है, वहां पाने का इंतजाम कर रहा है। लेकिन उसी पाने के लिए छोड़ रहा है। और हम समझते हैं कि बहुत त्याग किया जा रहा है। लोभ छोड़ा जा रहा है। कोई लोभ नहीं छोड़ा जा रहा है। जिस आदमी का लोभ छूट जाता है, उसके मन में स्वर्ग की कामना भी उसी क्षण छूट जाती है। क्योंकि जब लोभ नहीं है, स्वर्ग की जरूरत क्या है? स्वर्ग लोभ का ही विस्तार है। जिस आदमी का लोभ

छूट जाता है, उसे मोक्ष की कामना भी छूट जाती है। क्योंकि मोक्ष भी लोभ का विस्तार है। परम आनंद की आकांक्षा भी तो लोभ का विस्तार है।
लेकिन नहीं, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि हमने एक डिसेप्टिव पर्सनैलिटी, एक धोखा देने वाला व्यक्तित्व विकसित किया है। और उसने ही सारे समाज को रुग्ण किया है, बीमार किया है, भ्रष्ट किया है। सबसे बड़ी भ्रष्टता एक है कि एक-एक आदमी दो-दो हिस्सों में खंडित हो जाए। हम कहते कुछ और हैं, जीते कुछ और हैं, कामना कुछ और करते हैं।
मेरी अपनी समझ यह है कि अगर मनुष्य को ऊंचा उठाना है, तो पहली तो बात
यह है, मनुष्य को पाखंडी मत बनने देना। क्योंकि पाखंडी मनुष्य से गिरा हुआ कोई आदमी नहीं होता। और अगर मनुष्य को पाखंडी नहीं बनने देना है, तो पहली बात है, मनुष्य के जीवन में जो भी हो उसकी निंदा मत करना, क्योंकि निंदा से पाखंड शुरू होता है। जो भी मनुष्य के जीवन में है, उसको स्वीकार करना और समझना, और उसको रूपांतरित करना, दमन मत करना।
अब जैसे क्रोध है। मनुष्य के भीतर क्रोध है। और प्रकृति ने बहुत जान
कर क्रोध रखा है। और अगर किसी बच्चे में क्रोध न हो, तो वह बच्चा विकसित ही नहीं हो सकेगा। आप जरा सोचें कि एक बच्चा पैदा हो जिसमें क्रोध है ही नहीं; आप उस बच्चे की कल्पना करें जिसमें क्रोध है नहीं। वह बच्चा विकसित नहीं हो सकेगा। क्योंकि शिक्षक उसको चांटा मारेगा, वह बैठा हुआ देखता रहेगा। उसे क्रोध ही नहीं आएगा कि वह शिक्षक के चांटे से सोचे कि मैं जो आज नहीं करके लाया हूं, वह करके लाऊं। उसको क्रोध ही नहीं आता। उसका बाप कहेगा, स्कूल जाओ, डंडा उठा लेगा। वह बैठा रहेगा, क्योंकि उसे क्रोध नहीं आता। क्रोध तो गति है, ताकत है। वह जरूरी है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि
वह सदा बना रहे। इसका यह मतलब है कि वह एक तल पर जरूरी है और एक तल पर वह सारी की सारी शक्ति रूपांतरित होनी चाहिए। जैसे कोई आदमी सीढ़ी पर चढ़ता है। तो पहले सीढ़ी पर चढ़ना जरूरी है, अगर ऊपर जाना है। लेकिन फिर ऊपर जाकर सीढ़ी छोड़नी भी पड़ेगी। और नहीं तो वह कहे कि जब हम सीढ़ी पर चढ़ गए, तो अब हम छोड़ नहीं सकते। क्योंकि हम चढ़े क्यों? और अगर उतरना था तो हम चढ़ते ही नहीं, पहले आप बता देते।
ऊपर जाने के लिए सीढ़ी पर चढ़ना भी जरूरी है और ऊपर जाने के लिए सीढ़ी को छोड़ना भी जरूरी है। नहीं तो सीढ़ी पर ही अटक जाइएगा।
क्रोध से गुजरना जरूरी है। क्रोध होना भी जरूरी है और एक सीमा पर जाकर क्रोध से मुक्त हो जाना भी जरूरी है।
लेकिन क्रोध की निंदा यह सिखाती है कि नहीं, क्रोध पाप है, छोड़ो! और छोड़ेंगे कैसे आप क्रोध को? वे कहते हैं, क्षमा का भाव धारण करो।
लेकिन जिस आदमी में क्रोध है, वह क्षमा का भाव धारण कैसे कर सकता है?
वह अगर किसी से यह भी कहेगा कि जाओ, मैंने क्षमा कर दिया। तो उसमें भी क्रोध होगा। क्रोधी आदमी की क्षमा भी क्रोध ही होगी। और वह उसमें भी मजा लेगा कि देखो मैंने क्षमा कर दिया, मैं कोई साधारण आदमी नहीं! क्रोध से भरा हुआ व्यक्ति, जो भी करेगा, उसमें क्रोध होगा।
इसलिए मैं कहता हूं, क्रोध को दबाना मत, समझना। हां, क्रोध जितना समझ लिया जाएगा, उतना ही विलीन हो जाता है। और जहां क्रोध नहीं है, वहां क्षमा का जन्म होता है। इस बात को समझ लें ठीक से! क्षमा क्रोध की उलटी नहीं है, कि आप क्षमा को ले आएं और क्रोध खत्म हो जाए। क्षमा क्रोध का अभाव है, एब्सेंस है। क्रोध चला जाए तो जो रह जाता है उसका नाम क्षमा है।
हिंसा का अभाव है अहिंसा, हिंसा का विरोध नहीं।
वासना का अभाव है ब्रह्मचर्य, वासना का दमन नहीं।
लेकिन हमें जो समझाया गया है, वह यह है कि वासना का दमन है ब्रह्मचर्य, आत्मदमन है ब्रह्मचर्य, संयम है ब्रह्मचर्य।
नहीं, संयम ब्रह्मचर्य नहीं है। संयम का मतलब ही यह होता है कि वासना मौजूद है और तुम सम्हाल रहे हो। संयम का क्या मतलब होता है? संयम का मतलब होता है कि जिसका हम संयम कर रहे हैं वह मौजूद है, और हम उसको सम्हाले हुए हैं। लेकिन जिसको आप सम्हाले हुए हैं वह मौजूद है, और सारे प्राणों में भटक रहा है और घूम रहा है।

ब्रह्मचर्य संयम नहीं है। ब्रह्मचर्य कामवासना की समझ से आया छुटकारा है। समझ से! सिर्फ ज्ञान के अतिरिक्त और किसी चीज से छुटकारा नहीं होता।
इसलिए मैं गांधी जी से सहमत नहीं हूं। मैं उन किन्हीं भी लोगों से सहमत नहीं हूं जो कहते हैं कि हमें संयम साधना चाहिए। और वही दिक्कत गांधी जी को अंतिम क्षण तक रही। जीवन भर उन्होंने संयम और ब्रह्मचर्य साधा, लेकिन आखिरी क्षणों में उन्हें खुद शक आ गया कि पता नहीं यह संयम सध पाया कि नहीं? क्योंकि संयम कितना ही साधो, पीछे वह मौजूद रहता है जिसको आपने दबाया है। और जीवन अंत होने से पहले एक स्त्री को नग्न लेकर बिस्तर पर सोना शुरू किया, यह जांच के लिए कि संयम पूरा हुआ है कि नहीं। जीवन भर के ब्रह्मचर्य की साधना के बाद भी भीतर यह खयाल है, यह डाउट है, यह संदेह है कि जो मैंने साधा है वह सध पाया है कि नहीं सध पाया!
लेकिन ऐसा संदेह महावीर और बुद्ध को नहीं है। तो मेरा मानना है कि गांधी और महावीर और बुद्ध के बीच बुनियादी अंतर है। गांधी संयम साध रहे हैं, बुद्ध असंयम को समझ रहे हैं। महावीर हिंसा को समझ कर हिंसा से मुक्त हो गए हैं, तो जो शेष रह गया है वह अहिंसा है। गांधी जी हिंसा को दबा कर अहिंसक होने की चेष्टा कर रहे हैं। यह चेष्टा नैतिक चेष्टा है।
इसलिए मैं गांधी जी को एक नैतिक महापुरुष कहता हूं, धार्मिक व्यक्ति नहीं। बुद्ध और महावीर को धार्मिक कहता हूं। और धार्मिक और नैतिक व्यक्ति में फर्क करता हूं। नैतिक व्यक्ति वह है, जो क्रोध को बुरा मान कर क्षमा की साधना करता है, जो सेक्स को बुरा मान कर ब्रह्मचर्य की साधना करता है, जो परिग्रह को बुरा मान कर अपरिग्रह की साधना करता है। और धार्मिक व्यक्ति वह है, जो परिग्रह को समझ कर अपरिग्रह को उपलब्ध होता है, जो वासना को समझ कर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होता है, जो हिंसा को जान कर, हिंसा को पहचान कर हिंसा से छुटकारा पा जाता है और व्यक्तित्व में अहिंसा शेष रह जाती है। धार्मिक और नैतिक व्यक्ति में बुनियादी अंतर है।
मुझे क्रोध आता है। मैं दो काम कर सकता हूं। क्रोध को दबा लूं, और रोज दबाता चला जाऊं। और इतना दबा लूं कि अंततः मुझे भी पता न चले कि मुझमें क्रोध रह गया है। लेकिन फिर भी क्रोध होगा। बहुत गहरे में सरक गया होगा। आदमी के मन में बहुत गहराइयां हैं। जिस मन को हम जानते हैं, वह बहुत थोड़ा है। उससे दस गुना बड़ा मन नीचे छिपा है, अंधेरे में, अनकांशस, अचेतन। वहां सरक जाएगा क्रोध। और वहां सरक कर नये-नये अनूठे रास्तों से प्रयोग शुरू करेगा। हमें पता भी नहीं चलेगा कि यह क्रोध क्या करवा रहा है।
वहां हिंसा सरक जाएगी, और नये रूपों में शुरू हो जाएगी। हिंसा का मतलब होता है, दूसरे को दबाना। अगर मैं अपने भीतर हिंसा को दबा कर अहिंसक हो जाऊं, तो मैं दूसरों को दबाने की नई-नई तरकीबें निकालूंगा। मैं उनसे कहूंगा कि जो मैं कह रहा हूं वह सत्य है। जो मैं कह रहा हूं वह भगवान की आवाज है। उसे मानना पड़ेगा। और उसे अगर नहीं मानते हो तो मैं अनशन करके मर जाऊंगा।
यह भी हिंसा है। अगर दूसरे आदमी को मैं धमकी देता हूं कि मैं अनशन करके मर जाऊंगा, तो मैं हिंसा कर रहा हूं। हिंसा का मतलब क्या है? हिंसा का मतलब है दूसरे पर दबाव, प्रेशर। हिंसा का मतलब है दबाना।
मैं एक छुरा लेकर आपके घर पर आ जाऊं और कहूं कि मैं छुरा मार दूंगा, अगर मेरी बात नहीं मानते, इसमें और मैं आपके घर आ जाऊं और लेट जाऊं और कहूं कि मैं भूखा अनशन करता हूं आमरण, मर जाऊंगा, अगर मेरी बात नहीं मानते--इन दोनों बातों में बुनियादी भेद नहीं है। एक में हिंसा प्रकट है, दूसरे में हिंसा अप्रकट है। एक में हिंसा ऊपर है, दूसरे में हिंसा भीतर चली गई। दूसरे में अहिंसा ऊपर है, हिंसा भीतर।
अहिंसक आदमी अनशन भी नहीं कर सकता किसी को दबाने के लिए। क्योंकि अहिंसक व्यक्ति का कहना यह है, मानना यह है कि मैं कौन हूं जो दूसरे को दबाऊं? मेरा हक क्या है? मेरा दबाव क्या है? मैं हूं कौन जो दूसरे को दबाऊं?

लेकिन अगर हमने हिंसा को भीतर दबा लिया, तो हिंसा नये मार्ग खोजेगी अपना कार्य जारी रखने के लिए। और वे अहिंसक मार्ग हो जाएंगे। और हिंसा जब अहिंसा की शक्ल में आती है तो और खतरनाक हो जाती है। क्योंकि हम उसे पहचान भी नहीं पाते कि उसने कौन से रास्ते ले लिए हैं।

मेरी दृष्टि में, संयम थोपना नहीं है, ब्रह्मचर्य साधना नहीं है, ऊपर
से आरोपण नहीं करना है; भीतर चित्त की जो स्वाभाविक दशा है, उसको समझना है। लेकिन अब तक संस्कृति ने, सभ्यता ने मनुष्य के स्वाभाविक चित्त को स्वीकार नहीं किया है। वह उसकी निंदा करती है। निंदा करने के कारण प्रत्येक व्यक्ति पाखंडी हो जाता है।
मनुष्य की निंदा बंद करो, अगर मनुष्य को बदलना हो। मनुष्य जैसा है, उसे स्वीकार करो। और वह जैसा है उसकी खोज करो कि वह वैसा क्यों है? और उसके चित्त को, उसकी चेतना को, उसके ध्यान को विकसित करो कि वह अपने क्रोध को समझ सके।
कभी आप एक छोटा प्रयोग करके देखें, और आपको समझ में आ जाएगा कि मैं क्या कह रहा हूं। कभी आप जानते हुए क्रोध करने की कोशिश करें। जब क्रोध आ जाए, तब आप पूरी तरह होश से भर जाएं कि मुझे क्रोध आ गया है, अब मैं क्रोध करता हूं। और अगर आप क्रोध कर लें, तो आपने एक चमत्कार कर दिया दुनिया में, जो अब तक नहीं हो सका है। जानते हुए कोई आदमी क्रोध नहीं कर सकता। जैसे ही आपने जाना कि मैं क्रोध से भर गया हूं, क्रोध विलीन हो जाएगा। क्रोध सिर्फ मूर्च्छा में होता है, अज्ञान में होता है, बेहोशी में होता है।
एक मेरे मित्र थे। भारी क्रोध की आदत थी। उन्हें बहुत कहा। उन्होंने कहा, मेरी कुछ समझ में नहीं पड़ता; जब क्रोध मुझे पकड़ता है तो मुझे याद ही कहां रहता है कि मैं होश रखूं। वह तो हो ही जाता है, जब मैं गाली-वाली बक चुकता हूं, तब मुझे खयाल आता है। जब मैं मार-पीट कर चुकता हूं, तब मुझे पता चलता है कि हो गया, फिर हो गया। मुझे याद ही नहीं रहता, मैं याद कैसे करूं? मैंने एक कागज पर लिख कर उनको एक चिट दे दी, उसमें लिख दिया कि अब मुझे क्रोध आ रहा है। मैंने कहा, इसे सदा खीसे में रखो। जब भी क्रोध आए, कृपा करके इसे एक दफे निकाल कर अंदर रख लेना।
उन्होंने कहा, देखें यह हो सकता है, इसकी कोशिश करें।
पंद्रह दिन बाद मेरे पास आए और उन्होंने कहा, यह तो बड़ी अदभुत बात हो गई। हाथ ले जाने की जरूरत नहीं पड़ती, यहां हाथ खीसे पर गया और जैसे कोई चीज भीतर टूट जाती है खटके के साथ। और लगता है, फिर वही! और इतना होश, कि वह गया जो पकड़ रहा था।
सिर्फ बेहोशी में पकड़ती हैं वासनाएं मनुष्य को, होश में नहीं। इसलिए दमन करने की जरूरत नहीं है, जागने की जरूरत है। जो वासना पीड़ित कर रही है, उसके प्रति जागिए; घबड़ाइए मत। सेक्स पकड़ता है? सेक्स के प्रति जागिए। और देखिए कि जाग कर क्या होता है। जाग कर हैरान हो जाएंगे, जिस वासना के प्रति जागेंगे, वही क्षीण होने लगेगी। और अगर निरंतर जागने का प्रयोग जारी रहे, अवेयरनेस का, तो सारी वासनाओं से छुटकारा हो जाता है।
लेकिन यह छुटकारा बहुत दूसरा है, यह संयम नहीं है। क्योंकि इसके बाद संयम करने को कुछ भी नहीं बचता।
महावीर को लोग कहते हैं कि महाक्षमावान थे। मैं कहता हूं, झूठ कहते हैं। महावीर ने कभी किसी को क्षमा नहीं किया। क्योंकि क्षमा वही आदमी कर सकता है जो क्रोध करता हो। महावीर ने क्रोध ही नहीं किया, तो क्षमा करने का क्या सवाल है! क्रोध हो भीतर तो क्षमा करने की जरूरत पड़ती है। लेकिन जो आदमी क्रोधित ही नहीं हुआ, वह क्षमा कैसे करेगा? महावीर की क्षमा बिल्कुल झूठी बात है। क्षमा के लिए पहले क्रोध करना जरूरी है।
अहिंसक होने के लिए पहले हिंसा होनी जरूरी है। लेकिन जिसकी हिंसा विदा हो गई है, उसे यह भी पता नहीं होता कि मैं अहिंसक हूं। उसकी जिंदगी एक सहज जीवन बन जाती है--एक स्पांटेनिटी, एक सहजता।
मनुष्य को अब तक गलत उसूलों पर ढाला गया है, इसीलिए समाज ऊंचा नहीं उठ पाया। समाज ऊंचा उठेगा उसी दिन, जिस दिन हम मनुष्य की सहजता को स्वीकार

लेंगे; सरलता को, उसके व्यक्तित्व में जो भी है उसको स्वीकार कर लेंगे, उसको समझेंगे, उस पर मेडिटेट करेंगे, उस पर ध्यान को विकसित करेंगे। दुनिया में संयम की नहीं, ध्यान की जरूरत है। दुनिया में कंट्रोल की नहीं, मेडिटेशन की जरूरत है। आदमी को नियंत्रण करना नहीं सिखाना है, आदमी को जागना सिखाना है। और अगर हम जागना सिखा सके, तो एक दूसरी मनुष्यता पैदा हो जाएगी, ऐसी मनुष्यता जमीन पर कभी भी नहीं थी। लेकिन आज तक जो मनुष्यता है, वह गलत सिद्धांतों के कारण गलत है।
एक छोटी सी कहानी, और अपनी बात मैं पूरी करूं।
एक राजमहल के पास से एक पंखा बेचने वाला गुजरता था। वह बहुत जोर से चिल्ला रहा था--कि ऐसे अनूठे पंखे कभी भी नहीं बने दुनिया में!
सम्राट के पास दुनिया के कोने-कोने के पंखे थे। उसने झांक कर नीचे देखा कि ऐसे अनूठे पंखे कौन ले आया! नीचे देखा एक साधारण गरीब आदमी, रोज पंखे बेचता था वही, साधारण पंखे, दो-दो पैसे के पंखे बेच रहा है। सम्राट ने गौर से सुना। वह फिर से चिल्ला रहा है कि अनूठे पंखे हैं! ऐसे न कभी देखे गए और न कभी बने!
सम्राट ने उस पंखेवाले को ऊपर बुला लिया। और उससे पूछा कि इन पंखों की खूबी क्या है? दिखते तो बिल्कुल साधारण हैं।
उस पंखेवाले ने कहा, महाराज, असाधारण दिखने वाले अक्सर साधारण होते हैं। यह पंखा बहुत असाधारण है; दिखाई नहीं पड़ता, है।
क्या खूबी है इसकी?
उसने कहा, यह सौ साल चलता है। इसकी सौ साल की गारंटी है।
सम्राट ने कहा, हैरान कर रहे हो! यह पंखा इतना कमजोर दिखता है कि दो घंटे चल जाए तो मुश्किल है।
उस आदमी ने कहा, मैं तो गारंटी देता हूं।
सम्राट ने कहा, इसके दाम कितने हैं?
उस आदमी ने कहा, सौ रुपये दाम हैं, ज्यादा दाम भी नहीं हैं।
उस सम्राट ने कहा, मैंने बहुत पंखे देखे, लेकिन दो पैसे के पंखे के दाम
सौ रुपये! तुम कहते क्या हो? धोखा देना चाहते हो? फांसी लगवा दूंगा!
उस आदमी ने कहा, उसकी चिंता मत करिए। रोज आपके महल के नीचे से गुजरता हूं। जिस दिन पंखा टूट जाए, मुझे बुला लीजिए। और रुपये चाहें तो अभी मत दें, पीछे भी दे सकते हैं। लेकिन मैं गरीब आदमी हूं, और मेरा कोई भरोसा नहीं कि कब मर जाऊं। आपका भी कोई भरोसा नहीं कब मर जाएं। पंखा सौ साल की गारंटी का है। इसलिए रुपये मैं अभी ले लेता हूं।
(वह पंखा खरीद लिया गया। दो-चार दिन में ही पंखे की डंडी बाहर निकल गई। सातवें दिन तो वह बिल्कुल मुर्दा हो गया। सम्राट ने सातवें दिन उस पंखेवाले को बुलवाया। सम्राट ने कहा, यह पंखा पड़ा है टूटा हुआ। सात दिन में ही यह गति हो गई, तुम कहते थे सौ वर्ष चलेगा! उस आदमी ने कहा कि मालूम होता है आपको पंखा झलना नहीं आता है। पंखा तो सौ वर्ष चलता ही। पंखा तो गारंटीड है। सम्राट ने कहा, और भी सुनो! पंखा कैसे झला जाता है, यह मैं नहीं जानता हूं! )
उस आदमी ने कहा, कृपा करके झल कर बताइए, उससे मैं समझ जाऊंगा। महाराज
ने पंखा झल कर बताया। वह आदमी हंसा और उसने कहा, बस गड़बड़ हो गई। यह पंखा झलने का ढंग नहीं है। यह पंखा तो सौ साल चलता, लेकिन आपने गलत ढंग से झला, इसलिए टूट गया। (मैं आपसे कहता हूं कि पंखा पकड़िए सामने और सिर को हिलाइए। पंखा सौ वर्ष चलेगा। आप समाप्त हो जाएंगे, लेकिन पंखा बचेगा। पंखा गलत नहीं है, आपके झलने का ढंग गलत है।)
(यह आदमी पैदा हुआ है--पांच-छह हजार या दस हजार वर्ष की संस्कृति का यह आदमी फल है। लेकिन संस्कृति गलत नहीं है, यह आदमी गलत है।) हमारी फिर आपको गारंटी भी सही है, आदमी गलत है, आदमी अपना ढंग बदले।
बहुत हो चुकी यह बात। पांच-छह हजार साल से सुनते-सुनते हम परेशान हैं, सारी दुनिया परेशान है। अब हमें बदलाहट करनी पड़ेगी। आदमी को करना पड़ेगा स्वीकार और सिद्धांत बदलने पड़ेंगे।

यह दुनिया बदल सकती है, यह समाज बदल सकता है। आदमी गलत नहीं है, सिद्धांत गलत हैं। आदमी के लिए सिद्धांत हैं, सिद्धांतों के लिए आदमी नहीं है। अगर सिद्धांत काम नहीं करते, तो हम सिद्धांत बदलेंगे। और बहुत समय हो गया प्रयोग करते हुए। अब एक नया प्रयोग करना चाहिए--आदमी की स्वीकृति का प्रयोग। आदमी की स्वीकृति का प्रयोग, आदमी जैसा भी है, वह स्वीकृत है हमें। इस स्वीकृत आदमी को हम मानेंगे। इस स्वीकृति के भीतर आदमी को जगाएंगे और कहेंगे, अपने प्रति जागो--क्या-क्या तुम्हारे भीतर है! और मजे की बात है, जितना ही जागिए, जो श्रेष्ठ है वह शेष रह जाता है जागने पर, जो अश्रेष्ठ है वह विलीन हो जाता है। संयम की कोई जरूरत नहीं पड़ती। संयम धोखा है। संयमी आदमी बेईमान आदमी है। संयमी आदमी अपने साथ लड़ाई कर रहा है। और जो अपने साथ लड़ाई कर रहा है, वह हमेशा पाखंड में गिर जाएगा।
नहीं; आदमी को आदमी के भीतर लड़ाना नहीं है, जगाना है। और इस जगाने के सूत्र पर, कल तीसरे सूत्र पर सुबह मैं बात करूंगा, वह अंतिम सूत्र होगा। दो सूत्रों पर हमने बात की है, कल तीसरे सूत्र पर सुबह बात करूंगा--आदमी कैसे जागे?
मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन सत्य की खोज
तीसरा प्रवचन

जागरण के तीन सूत्र

मेरे प्रिय आत्मन्!
जो बाहर है, वह एक स्वप्न से ज्यादा नहीं है। और जो सत्य है, वह भीतर है। जो दृश्य है, वह परिवर्तन है। और जो द्रष्टा है, वह सनातन है।
सत्य की खोज में विज्ञान बाहर देखता है, धर्म भीतर देखता है। विज्ञान परिवर्तन की खोज है, धर्म शाश्वत की। और सत्य शाश्वत ही हो सकता है। इस शाश्वत सत्य की दिशा में तीसरा सूत्र साक्षीभाव है। द्रष्टा को खोजना है, तो द्रष्टा बने बिना और कोई रास्ता नहीं है।
लेकिन हम सब हैं सोए हुए लोग। हम सब करीब-करीब सोए-सोए जीते हैं, सोए-सोए ही जागते हैं।
बुद्ध एक सुबह प्रवचन करते थे। कोई दस हजार लोग इकट्ठे थे। सामने ही बैठ कर एक भिक्षु पैर का अंगूठा हिलाता था। बुद्ध ने बोलना बंद कर दिया और उस भिक्षु को पूछा कि यह पैर का अंगूठा तुम्हारा क्यों हिल रहा है? जैसे ही बुद्ध ने यह कहा, पैर का अंगूठा हिलना बंद हो गया। उस भिक्षु ने कहा, आप भी कहां की फिजूल बातों में पड़ते हैं! आप अपनी बात जारी रखिए। बुद्ध ने कहा, नहीं; मैं यह पूछे बिना आगे नहीं बढूंगा कि तुम पैर का अंगूठा क्यों हिला रहे थे? उस भिक्षु ने कहा, मैं हिला नहीं रहा था, मुझे याद भी नहीं था, मुझे पता भी नहीं था।
तो बुद्ध ने कहा, तुम्हारा अंगूठा है, और हिलता है, और तुम्हें पता नहीं; तो तुम सोए हो या जागे हुए हो? और बुद्ध ने कहा, पैर का अंगूठा हिलता है, तुम्हें पता नहीं; मन भी हिलता होगा और तुम्हें पता नहीं होगा। विचार भी चलते होंगे और तुम्हें पता नहीं होगा। वृत्तियां भी उठती होंगी और तुम्हें पता नहीं होगा। तुम होश में हो या बेहोश हो? तुम जागे हुए हो या सोए हुए हो?
यदि हम गौर से देखें, तो आंखें खुली होते हुए भी हम अपने को होश में नहीं कह सकते। हमारा मन क्या कर रहा है इस क्षण, वह भी हमें ठीक-ठीक पता नहीं। अगर कभी दस मिनट एकांत में बैठ जाएं, द्वार बंद कर लें, और मन में जो चलता हो उसे एक कागज पर लिख लें--जो भी चलता हो, ईमानदारी से--तो उस कागज को आप अपने प्रियजन को भी बताने के लिए राजी नहीं होंगे। मन में ऐसी बातें चलती हुई मालूम पड़ेंगी कि लगेगा क्या मैं पागल हूं? ये बातें क्या हैं जो मन में चलती हैं? खुद को भी विश्वास नहीं होगा कि यह मेरा ही मन है जिसमें ये सारी बातें चलती हैं!
लेकिन हम भीतर देखते ही नहीं, बाहर देख कर जी लेते हैं। मन में क्या चलता है, पता भी नहीं चलता। और यही मन हमें सारी क्रियाओं में संलग्न करता है। इसी मन से क्रोध उठता है, इसी मन से लोभ उठता है, इसी मन से काम उठता है। इस मन के गहरे में न हम कभी झांकते हैं, न कभी इस मन के गहरे में जागते हैं। जो भी चलता है, चलता है। यंत्रवत, सोए-सोए हम सब कर लेते हैं
अगर आपने कभी क्रोध किया हो, तो शायद ही आप यह कह सकें कि मैंने क्रोध किया है। आपको यही कहना पड़ेगा, क्रोध आ गया। आज तक किसी आदमी ने क्रोध किया नहीं है, क्रोध सदा आया है। आप क्रोध के कर्ता नहीं हैं, आप सिर्फ क्रोध के विक्टिम हैं, शिकार हैं। आप पूरी जिंदगी स्मरण करें तो यह नहीं कह सकते कि मैंने एक बार क्रोध किया था। क्रोध में, करने में आप मालिक नहीं थे। अगर मालिक होते तो आपने किया ही नहीं होता। कोई आदमी जान कर गड्ढे में नहीं गिरता है। गिर जाता है, यह दूसरी बात है। किसी आदमी ने जान कर क्रोध भी नहीं किया है कभी। क्रोध हो जाता है, यह दूसरी बात है। क्रोध घटता है, क्रोध हम करते नहीं हैं। तो हम सोए हुए आदमी हैं या जागे हुए?
और प्रेम के संबंध में तो लोग कहते ही हैं कि प्रेम हमने किया नहीं, हो गया। लेकिन इसका मतलब क्या होता है कि प्रेम हो गया? इसका मतलब यह होता है कि जैसे हवाएं चलती हैं और वृक्ष के पत्ते हिलते हैं अवश-परवश, जैसे आकाश में बादल आते हैं और हवाएं उन्हें जहां उड़ा कर ले जाती हैं, चले जाते हैं,

विवश। क्या वैसे ही हमारे भीतर भी चित्त में भावनाएं उठती हैं प्रेम की, क्रोध की, घृणा की और हम विवश होकर उनके साथ हिलते-डुलते रहते हैं? हमारा कोई वश नहीं है? हम अपने मालिक नहीं हैं?
एक फकीर था यूनान में, गुरजिएफ। वह तो कहता था, आदमी यंत्र है। वह यह मानता ही नहीं था कि सभी लोगों के भीतर आत्मा है। वह कहता था, जो सोए हुए हैं उनके भीतर आत्मा मानने का कारण क्या है? जाग्रत कोई हो तो ही उसके भीतर आत्मा मानने का कारण है। अगर आत्मा है भी तो सोई हुई है।
हमारा सारा व्यक्तित्व ही सोया हुआ है। न हमने कभी क्रोध किया है, न हमने प्रेम किया है। चीजें घटती रही हैं और हम उनके साथ हिलते रहे हैं, डोलते रहे हैं--यंत्रवत! जैसे किसी ने बटन दबा दी हो और बिजली जल गई, तो बिजली यह नहीं कह सकती कि मैं जल गई हूं। वह यही कह सकती है, जलना हो गया। हमें भी कोई बटन दबा देता है और क्रोध जल जाता है। हम भूल से कहते हैं
कि मैंने क्रोध किया। क्रोध हो गया है। बटन दबी और क्रोध हो जाता है, पता भी नहीं चलता कब हो गया। हमारे सारे व्यक्तित्व का पूरा का पूरा आधार ऐसा ही अनकांशस, अचेतन है। इस अचेतन चित्त को लेकर कोई सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकता है। सत्य के साक्षात्कार के लिए कांशस, चेतन, होश से भरा हुआ होना जरूरी है।
इस होश के लिए ही तीसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं। जीवन की प्रत्येक क्रिया के प्रति जागरूक होना साधना का एकमात्र मार्ग है। जो भी हम करते हैं, वह निद्रित न हो। जो भी हम करते हैं, वह जाग्रत हो।
बहुत कठिन है यह बात। अगर रास्ते पर आप चल रहे हैं, और जाग्रत होकर चलने की कोशिश करें, तो आपको पता चलेगा कितना कठिन है! एक-दो क्षण याद रख पाएंगे कि मैं चल रहा हूं, और फिर यह बात भूल जाएगी और चलना मैकेनिकल, यांत्रिक ढंग से होने लगेगा। मन कहीं और चला जाएगा। पांच मिनट भी चलते हुए यह होश रखना मुश्किल है कि मैं चल रहा हूं। अपनी ही क्रिया है चलने की, अपना ही मन है, लेकिन चलने की क्रिया को पांच मिनट तक सतत स्मरण रखना, रिमेंबर रखना, मुश्किल मामला है। इसे थोड़ा लौटते वक्त प्रयोग करेंगे तो खयाल में आएगा। और जब चलने की साधारण सी क्रिया के प्रति हम पांच मिनट नहीं जाग सकते, तो आत्मा की बहुत गहरी क्रियाओं के प्रति हम कैसे जाग सकते हैं?
बुद्ध एक रास्ते से गुजरते हैं। उनके साथ एक भिक्षु है आनंद। वे आनंद
से बात कर रहे हैं। एक मक्खी आकर उनके गले पर बैठी है, उन्होंने मक्खी उड़ा दी है। फिर रुक कर खड़े हो गए। फिर आनंद से कहा, भूल हो गई आनंद, मक्खी को मैंने सोए-सोए उड़ा दिया। तुमसे बात करता रहा और हाथ मशीन की तरह गया और मक्खी को उड़ा दिया। गलती हो गई है। फिर उस जगह हाथ ले गए जहां मक्खी बैठी थी--अब मक्खी वहां नहीं है, वह कभी की उड़ चुकी है--फिर वहां हाथ ले गए, फिर उस मक्खी को उड़ाया जो नहीं थी।
आनंद ने कहा, आप यह क्या कर रहे हैं?
बुद्ध ने कहा, अब मैं जाग कर मक्खी को उड़ा रहा हूं, जैसे कि मुझे उड़ाना चाहिए था। मैंने नींद में हाथ उठा दिया, वह होश में नहीं था हाथ। वह यांत्रिक था, वह आत्मिक नहीं था। अब मैं उस तरह हाथ ले जा रहा हूं जाग कर, जैसे कि मुझे ले जाना चाहिए था।
कभी आपने खयाल किया? इस हाथ को नीचे से ऊपर तक उठाएं होश से भर कर, आपको पूरा पता हो कि हाथ उठ रहा है। और आप हैरान हो जाएंगे। जितनी देर आप जागे रहेंगे कि हाथ उठ रहा है, उतनी देर चित्त शांत हो जाएगा।
जाग्रत चित्त शांत होता है, सोया चित्त अशांत होता है। रास्ते पर चल
कर देखें दस मिनट भी जागे हुए। और जितनी देर होश रहेगा कि मैं चल रहा हूं, उतनी देर चित्त शांत रहेगा; जैसे ही होश जाएगा, चित्त अशांत हो जाएगा। हमारी सामान्य क्रियाओं से शुरू करना जरूरी है साक्षी का भाव--चलते, उठते, खाना खाते, सुनते, बोलते। अभी मैं बोल रहा हूं और आप सुन रहे हैं। यह सुनना दो तरह से हो सकता है। या तो सोए-सोए आप सुन रहे हैं, सुन रहे हैं एक यंत्र की तरह। या आप जाग कर सुन रहे हैं; कि आपको पूरा पता है कि आप सुन रहे

हैं; होश है पूरा कि आप सुन रहे हैं। अगर आप होशपूर्वक सुन रहे हैं, तो सुनने में ही एक अदभुत शांति आनी शुरू हो जाएगी जिसका आपको कोई पता नहीं। यहीं प्रयोग करके देखें। मुझे सुन रहे हैं, इस तरह सुनें कि आपको पूरी तरह पता है कि आप सुन रहे हैं। सिर्फ कान पर चोट नहीं पड़ रही, पीछे मन पूरी तरह जाग कर सुन रहा है। मन साक्षी है कि सुनने की क्रिया हो रही है। और मन एकदम शांत होने लगेगा। सुनने में भी शांत होने लगेगा। भोजन कर रहे हैं, तो भोजन करें जाग कर। और जैसे ही जाग कर भोजन करेंगे, भोजन करने की क्रिया ही रह जाएगी, मन और कहीं नहीं जाएगा। जाग कर कोई भी काम होगा तो मन इधर-उधर भागना बंद कर देगा। सोया हुआ मन भागता है, जागा हुआ मन नहीं भागता।
जापान में एक फकीर था बोकोजू। वह लोगों को वृक्षों पर चढ़ने की कला सिखाता था। और वह यह कहता था कि वृक्षों पर चढ़ने की कला के साथ ही मैं जागने की कला भी सिखाता हूं।
अब फकीर को वृक्षों पर चढ़ने की कला सिखाने से कोई प्रयोजन भी नहीं है। लेकिन उस फकीर ने बड़ी समझ की बात खोजी थी कि जागना और वृक्ष पर चढ़ना एक साथ सिखाना आसान था।
जापान का एक राजकुमार उस फकीर के पास वृक्ष पर चढ़ना सीखने गया। कोई डेढ़ सौ फीट ऊंचे सीधे वृक्ष पर उस फकीर ने कहा कि तुम चढ़ो। और वह फकीर नीचे बैठ गया। राजकुमार जैसे-जैसे ऊपर जाने लगा, उसने नीचे लौट कर देखा, वैसे- वैसे फकीर ने आंख बंद कर ली। राजकुमार डेढ़ सौ फीट ऊपर चढ़ गया, जहां से जरा भी चूक जाए तो प्राणों का खतरा है। तेज हवाएं हैं, वृक्ष कंपता है, आखिरी शिखर तक जाकर उसे वापस लौटना है। श्वास लेने तक में डर लगता है। और वह फकीर कुछ भी नहीं बोलता, चुपचाप नीचे बैठा है, न बताता है कैसे चढ़ो, न कहता है कि क्या करो। फिर वह वापस लौटना शुरू हुआ। जब कोई पंद्रह फीट ऊपर रह गया, तब वह फकीर छलांग लगा कर खड़ा हो गया और उसने कहा, सावधानी से उतरना! होश से उतरना!
राजकुमार बहुत हैरान हुआ कि कैसा पागल है! जब मैं डेढ़ सौ फीट ऊपर था,
तब चुपचाप बैठा रहा। और अब जब मैं पंद्रह फीट कुल ऊंचाई पर रह गया हूं, जहां से गिर भी जाऊं तो अब बहुत खतरा नहीं है, वहां इन सज्जन को होश आया है, चिल्ला रहे हैं कि सावधान! होशियारी से उतरना! बोधपूर्वक उतरना! गिर मत जाना!
नीचे उतरा, और उसने कहा, मैं बहुत हैरान हूं! जब मैं डेढ़ सौ फीट ऊपर था,
तब तुमने सावधानी के लिए नहीं कहा। और जब पंद्रह फीट, नीचे से केवल पंद्रह फीट रह गया, तब तुम चिल्लाने लगे।
उस फकीर ने कहा, जब तुम डेढ़ सौ फीट ऊपर थे, तब तुम खुद ही सावधान थे। मुझे कुछ कहने की जरूरत न थी। खतरा इतना ज्यादा था कि तुम खुद ही जागे हुए रहे होगे। लेकिन जैसे-जैसे तुम जमीन के करीब आने लगे, मैंने देखा कि नींद ने पकड़ना तुम्हें शुरू कर दिया है, तुम्हारा होश खो रहा है। उस फकीर ने कहा, जिंदगी भर का मेरा अनुभव है, लोग जमीन के पास आकर गिर जाते हैं, ऊपर से कभी कोई नहीं गिरता। ऊपर इतना खतरा होता है कि आदमी जागा होता है। और उस राजकुमार से उसने कहा कि तुम सोचोः जब तुम डेढ़ सौ फीट ऊपर थे, हवाएं जोर की थीं और वृक्ष कंपता था, तब तुम्हारे मन में कितने विचार चलते थे?
उसने कहा, विचार? एक विचार नहीं चलता था! बस एकमात्र होश था कि जरा चूक
न जाऊं! मैं उस वक्त पूरी तरह जागा हुआ था।
तो उस फकीर ने पूछा, उस जागरण में तुम्हें कोई विचार नहीं थे! मन अशांत था, दुखी था, परेशान था, स्मृतियां आती थीं, भविष्य की कल्पना आती थी? उसने कहा, कुछ भी नहीं आता था! बस मैं था, डेढ़ सौ फीट की ऊंचाई थी, प्राण खतरे में थे! वहां कुछ भी न अतीत था, न भविष्य था। बस वर्तमान था! वही क्षण था और कंपती हुई हवाएं थीं, और प्राण का खतरा था, और मैं था, और मैं पूरी तरह जागा हुआ था!
उस फकीर ने कहा, तो तुम समझ लो, अगर इस तरह तुम चौबीस घंटे जागे रहने लगो, तो तुम उसे जान लोगे जो आत्मा है। इसके अतिरिक्त तुम नहीं जान सकते हो।

यह जान कर हैरानी होगी कि बहुत बार खतरों में आदमी को आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है। और यह भी जान कर हैरानी होगी कि खतरे का जो हमारे भीतर आकर्षण है, वह आत्मा को पाने का ही आकर्षण है। खतरे का भी एक आकर्षण है, डेंजर का भी एक आकर्षण है हर एक के भीतर। और जब तक आदमी में थोड़ा बल होता है, खतरे का एक मोह होता है, खतरे को स्वीकार करने की एक इच्छा होती है।
एक आदमी था, अभिनेता, उसने अमेरिका में रह कर लाखों रुपये कमाए। जापानी था। फिर लौटता था वापस, तो उसने सोचा सारी दुनिया घूमता हुआ चलूं। सारी संपत्ति, कोई अस्सी लाख रुपये लेकर लौटता था। अब उसने खयाल छोड़ दिया था काम करने का, अब रुपये कमा लिए थे, अब चुपचाप एक झोपड़ा बना कर कहीं जंगल में रहेगा। वह पेरिस रुका आकर अपनी यात्रा में। जिस होटल में ठहरा था, उस होटल में किसी परिचित ने कहा कि पेरिस आए हो, तो पेरिस के जुआघर देखना बहुत जरूरी है। उनको बिना देखे व्यर्थ है, पेरिस तुमने देखा ही नहीं। तो पेरिस का जुआघर जरूर देख लो। उस आदमी ने कहा, मैंने कभी जुआ नहीं खेला, लेकिन तुम कहते हो तो चलो चलता हूं। वह पेरिस के बड़े जुआघर में गया। और उसने जाकर अस्सी लाख रुपये एक ही साथ दांव पर लगा दिए, जितना लाया था कमा कर।
उसके मित्र ने कहा, क्या पागलपन करते हो! पागल हो गए हो? इतना बड़ा दांव पेरिस के जुआघर में कभी भी नहीं लगाया गया! एक ही दांव और इकट्ठा! और उसके पास एक पैसा नहीं बचता है पीछे।
पर उस अभिनेता ने कहा, अगर दांव ही लगाना है तो पूरा लगाना चाहिए, नहीं
तो दांव का मजा ही नहीं आएगा।
उसने वह अस्सी लाख रुपये का दांव लगा दिया और हार गया। उस जुआघर से होटल तक लौटने के लिए पैसे भी मित्र से उधार लेने पड़े! सन्नाटा छा गया होटल में। और सभी लोगों ने समझा, कहीं वह आदमी मर न जाए। इतना बड़ा धक्का होगा उसको! रात जाकर वह अपनी होटल में सो गया।
संयोग की बात, किसी दूसरे जापानी ने उस रात आत्महत्या की पेरिस में। सुबह अखबारों ने खबर छाप दी कि फलां-फलां अभिनेता ने आत्महत्या कर ली। क्योंकि पक्का ही हो गया कि वही होगा। दूसरा कौन होगा!
सुबह जब वह उठा, उसने अखबार पढ़ा, तो उसमें छपा है कि उसने आत्महत्या कर ली। वह बहुत हैरान हुआ! उसने मैनेजर को बुला कर कहा कि यह किसने अखबार में खबर छाप दी कि मैं मर गया? मैं मरा नहीं, मैंने कल आत्महत्या नहीं की, जुए के दांव के वक्त मुझे पहली बार आत्मा का साक्षात्कार हो गया है। जब मैंने सब दांव पर लगा दिया, तो श्वास भी मेरी रुक गई, विचार भी मेरे रुक गए। एक क्षण को दुनिया मिट गई मेरे लिए, दांव ही रह गया। मैं उसी पर जागा हुआ रह गया। क्योंकि पूरे जीवन का सवाल था। और उस मौन में, उस जागृति में मैंने जो जाना है, वह अस्सी लाख से बहुत ज्यादा का है। मैंने कुछ खोया नहीं, मरने का सवाल नहीं है। मैंने कुछ पा लिया, जो जिंदगी भर में मुझे कभी भी जिसकी सुगंध नहीं मिली थी।
आप जान कर हैरान होंगे कि जुए का मोह और मजा, खतरे का मोह और मजा भी मनुष्य की आत्मा को जानने की गहरी प्यास से ही पैदा होता है। पहाड़ों पर चढ़ने की इच्छा, समुद्रों में तैरने की इच्छा, खतरों में उतरने की इच्छा, युद्धों के मैदान पर चले जाने की इच्छा भी मनुष्य के आत्म-साक्षात्कार की किसी तीव्र कामना से पैदा होती है। क्योंकि लाखों वर्ष के अनुभव के बाद मनुष्य को यह पता चला है कि कभी-कभी खतरों में धुआं छूट जाता है, नींद टूट जाती है, और वह जो भीतर है उसकी झलक मिल जाती है। लेकिन वह खतरे के कारण नहीं मिलती, वह मिलती है जागरण के कारण। खतरे में जागरण हो जाता है और झलक मिल जाती है।
जैसे कोई आदमी अचानक आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाए, तो शायद एक सेकेंड को विचार बंद हो जाएंगे। विचार चलेंगे उस क्षण जब कोई छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो गया हो? विचार बंद हो जाएंगे। नींद रहेगी उस वक्त? बेहोशी रहेगी? जैसे छुरे की धार काट देगी सारी नींद को। भीतर कोई चीज जग जाएगी जैसी कभी नहीं जगी थी। लेकिन खतरा सवाल नहीं है, असली सवाल जागरण है। अगर हम जागने का प्रयोग कर सकें तो जीवन की सामान्य स्थितियों में भी वह भीतर

की धार, वह भीतर का द्वार, वह भीतर का अंधेरा टूट सकता है, नींद टूट सकती है।
लेकिन जागने के लिए क्या किया जा सकता है?
जागने के लिए तीन सूत्र स्मरण रखने चाहिए। एक तो शरीर की कोई भी क्रिया होशपूर्वक हो, बेहोशीपूर्वक न हो। शरीर की कोई भी क्रिया--हाथ भी हिले, पैर भी उठे, तो होशपूर्वक उठे। और अगर चार-छह महीने निरंतर ध्यान रखा जाए, तो शरीर की सब क्रियाएं होशपूर्वक होनी शुरू हो जाती हैं।
और जब शरीर की सारी क्रियाएं होशपूर्वक होती हैं, तो शरीर से सारे तनाव, सारे टेंशंस विदा हो जाते हैं। शरीर एकदम रिलैक्स्ड हो जाता है। शरीर इतना हलका हो जाता है, वेटलेस, जैसे उड़ जाएगा। ऐसा लगने लगता है जैसे शरीर है ही नहीं। शरीर इतना, इतना हलका हो जाता है कि जैसे उड़ सकेगा। जितना होशपूर्वक होगा शरीर का जीवन, उतना ही शरीर हलका हो जाएगा; उतना ही, शरीर नहीं है, ऐसा मालूम पड़ने लगेगा।
अभी हम शरीर ही हैं। अभी हमें शरीर ही सब कुछ मालूम पड़ता है। शरीर का बहुत वेट है, बहुत वजन है, शरीर पत्थर की तरह है, वही मालूम पड़ता है, उसके भीतर और कुछ मालूम नहीं पड़ता। क्योंकि शरीर बिल्कुल नींद में चल रहा है, सोया हुआ चल रहा है।
कभी आपने खयाल किया कि नींद में सोए हुए आदमी को उठाइए तो ज्यादा भारी मालूम पड़ेगा, जागे हुए आदमी को उठाने की बजाय। कभी आपने सोचा कि क्या बात हो सकती है? वजन तो उतना ही है--चाहे सोओ, चाहे जागो।
लेकिन सोया हुआ आदमी तमस से घिर गया है, निद्रा से घिर गया है। निद्रा भार है। जागा हुआ आदमी तमस से छूट गया है, नींद से मुक्त हो गया है। जागना निर्भार होना है। लेकिन यह तो बहुत साधारण जागना है। अगर कोई व्यक्ति अपनी शरीर की प्रत्येक क्रिया के प्रति पूरी तरह जागरूक होकर काम करता है, तो शरीर मिट जाता है, जिसको हम विदेह कहते हैं। विदेह का और कोई मतलब नहीं होताः बॉडीलेसनेस! बॉडी रहेगी, शरीर रहेगा; लेकिन शरीर नहीं है, ऐसा मालूम पड़ने लगेगा। शरीर के प्रति परिपूर्ण जागृति से विदेह अवस्था की संभावना शुरू होती है।
और जिसको विदेह होने का अनुभव होता है, उसे ही भीतर जो अशरीरी बैठा हुआ है, आत्मा बैठी हुई है, उसकी झलक मिलती है। जब तक हमें लगता है हम शरीर हैं, तब तक हमें उसकी झलक नहीं मिल सकती जो शरीर के भीतर छिपा है और जो शरीर नहीं है। शरीर जाए तो हमें उसका पता चल सकता है।
जैसे ही शरीर की क्रियाओं के प्रति हम जागरूक होकर व्यवहार करेंगे,
एक नया अनुभव होगाः लगेगा शरीर अलग है और मैं अलग हूं।
आज ही लौटते वक्त, चलते वक्त, आप खयाल करके चलें कि जाग कर चल रहे हैं।
आप अपने चलने के एक साक्षी हो गए हैं, एक विटनेस हो गए हैं। आप अपने ही चलने को देख रहे हैं, जान रहे हैं, पहचान रहे हैं। चलने की क्रिया चल रही है और भीतर आप उस क्रिया को देख भी रहे हैं, पहचान भी रहे हैं कि चलना हो रहा है। बायां कदम उठा, दायां कदम उठा, आगे गए, तेजी से जा रहे हैं--चलने की जो क्रिया है, जो मूवमेंट है, उसको आप देख भी रहे हैं।
तो आपको फौरन एक अजीब बात मालूम पड़ेगी। पता चलेगाः शरीर चल रहा है और मैं नहीं चल रहा हूं। शरीर चल रहा है और मैं नहीं चल रहा हूं। शरीर अलग है और मैं अलग हूं। शरीर और स्वयं के अलग होने का अनुभव बहुत जरूरी है, पहली सीढ़ी है, जिससे हम आत्मा के ज्ञान को उपलब्ध होंगे।
इसलिए पहला सूत्र हैः काया-स्मृति; रिमेंबरेंस ऑफ दि बॉडी, माइंडफुलनेस ऑफ दि बॉडी; शरीर के प्रति होश, शरीर के प्रति स्मृति, शरीर के प्रति जागरण। अदभुत है अनुभव शरीर के प्रति जागने का।
दूसरी सीढ़ी परः चित्त के प्रति जागरण, मन के प्रति जागरण। मन में क्या
हो रहा है? क्या चल रहा है? हम कभी देखते ही नहीं। हम कभी घड़ी, दो घड़ी को बैठ कर यह नहीं देखते कि मन में क्या हो रहा है? कैसे विचार चल रहे हैं? कैसी वासनाएं चल रही हैं? कैसी वृत्तियां चल रही हैं? मन में जोर के तूफान प्रतिक्षण चल रहे हैं, चौबीस घंटे चल रहे हैं। एक क्षण भी मन शांत नहीं है, मौन नहीं है। मन काम कर रहा है। शरीर तो रात में सो भी जाता है, मन तब भी

नहीं सोता, तब भी उसका काम जारी है। रात सपने चल रहे हैं। मुश्किल से स्वस्थ आदमी रात में दस मिनट को सोता है पूरी तरह, बाकी समय सपने चलते ही रहते हैं।
आप कहेंगे, हमें तो सुबह याद नहीं रहता!
याद नहीं रहेगा। सिर्फ वे ही सपने याद रहते हैं जो सुबह के करीब, जागने के करीब आने शुरू होते हैं। जब चित्त थोड़ा जागने लगता है तब जो सपने आते हैं वे याद रहते हैं। वे सपने याद नहीं रहते जो पूरी नींद में आते हैं। लेकिन रात भर सपने चल रहे हैं और मन काम कर रहा है, मन पूरे वक्त काम कर रहा है।
लेकिन इस मन का हमें कोई होश नहीं है। इस मन को कभी बैठ कर हमने देखा नहीं कि यह क्या कर रहा है। इस मन को भी देखना जरूरी है। कभी घड़ी, आधा घड़ी को दिन में, रात में, द्वार बंद करके बैठ जाएं, सिर्फ यह देखने के लिए कि मन क्या कर रहा है। लड़ने के लिए नहीं; मन से लड़ना नहीं है कि यह गलत है, यह नहीं आना चाहिए; यह ठीक है, यह आना चाहिए। ऐसा नहीं; मन में जो भी आ रहा है, उसे मैं देखूंगा। जैसे फिल्म पर चलती हुई कहानी को कोई देखता है, ऐसे मन के पर्दे पर जो भी चल रहा है, मैं देखूंगा।
देखने की शर्त हैः न तो कंडेमनेशन, निंदा मत करना मन की; अन्यथा देखना बंद हो जाएगा। मन बहुत बारीक है, बहुत डेलिकेट, बहुत सूक्ष्म है। अगर किसी चीज की निंदा की, तो वह पीछे सरक जाएगी चीज, फिर वह दिखाई नहीं पड़ेगी।
मन के दो हिस्से हैंः एक चेतन मन है और एक अचेतन मन है। चेतन मन बहुत छोटा सा है, अचेतन मन नौ गुना बड़ा है। जैसे ही किसी चीज पर आपने कहा, यह बुरी है, यह नहीं होनी चाहिए। वह चेतन से हट कर अचेतन में चली जाती है, अंधेरे में चली जाती है। वह आपसे डर गई, वह अब अंधेरे में चली जाएगी। वह रहेगी, जाएगी नहीं कहीं। लेकिन अब आपके सामने नहीं आएगी, आपके पीछे चली जाएगी।
मन की निंदा मत करना।
लेकिन हमें हजारों साल से यही सिखाया गया है कि मन की निंदा करो। हमें कहा जाता है, मन शत्रु है। हमें कहा जाता है, मन दुश्मन है, उसका नियंत्रण करो। हमें कहा जाता है, मन में जो बुरा है उसको हटाओ, जो अच्छा है उसे लाओ। और हमें पता ही नहीं कि अच्छा और बुरा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अच्छे और बुरे को अलग नहीं किया जा सकता। अगर कोई आदमी एक ही सिक्के के एक पहलू से मुक्त होना चाहे और दूसरे को बचाना चाहे, तो पागल हो जाएगा। फेंको तो दोनों फिंक जाते हैं, बचाओ तो दोनों बच जाते हैं। एक नहीं बचाया जा सकता। लेकिन हमें सिखाया गया है, अच्छे को बचाओ, बुरे को हटाओ। अच्छा और बुरा एक ही चीज के दो पहलू हैं। इसलिए जो संत है वह दोनों फेंक देता है--अच्छे और बुरे दोनों। तब जो शेष रह जाता है, वह बात ही और है। न वह अच्छा है, न वह बुरा है।
यह जो चित्त है हमारा, यह जो सतत चित्त की चलती हुई प्रक्रिया है, यह
जो प्रोसेस है माइंड की, इसको घड़ी, दो घड़ी कभी एकांत में बैठ कर सिर्फ देखने की जरूरत है। इस तरह जैसे आकाश में पक्षी उड़ रहे हैं और हम नीचे बैठ कर देखते हों; या समुद्र की लहरें आकर तट से टकरा रही हैं--हम कोई निर्णय नहीं लेते कि अच्छी हैं कि बुरी हैं--किनारे पर बैठे हैं और देख रहे हैं। हम यह नहीं कहते कि आकाश में उड़ता हुआ फलां पक्षी अच्छा है, फलां बुरा है-- बस नीचे बैठे हैं और देखते हैं। ऐसे ही मन के आकाश में जो विचारों के पक्षी चलते हैं या मन के सागर में जो विचारों की लहरें चलती हैं, चुपचाप बैठ जाएं और देखें कि क्या चल रहा है। सिर्फ देखना काफी है, कुछ और करना जरूरी नहीं। अगर चार-छह महीने निरंतर देखने का एक घंटे भी प्रयोग हो, तो आप चकित हो जाएंगे। जितनी देखने की क्षमता बढ़ेगी, उतने ही विचार कम होते चले जाएंगे। जितना आप होश से देखेंगे, उतने ही विचार गिर जाएंगे। और एक घड़ी ऐसी आएगी कि मन तो होगा, लेकिन विचार बिल्कुल नहीं होंगे। और जिस दिन ऐसी स्थिति आ जाती है, विचारशून्य मन की, उसी दिन--उसी दिन--हम मन से भी ऊपर उठ जाते हैं। शरीर के जागरण से शरीर के ऊपर उठता है व्यक्ति, मन के प्रति जागरण से मन से

ऊपर उठ जाता है। और तब वहां प्रवेश होता है जो आत्मा है। शरीर और मन से मुक्त हुए बिना कोई अंदर प्रवेश नहीं पा सकता।
लेकिन शरीर और मन से मुक्त होने के लिए न तो शरीर को कष्ट देने की जरूरत है, न भूखा मारने की जरूरत है, न धूप में खड़ा करके तपश्चर्या करने की जरूरत है। शरीर से मुक्त होने के लिए शरीर की क्रियाओं के प्रति जागने की जरूरत है।
मेरे एक मित्र सीढ़ियों से गिर पड़े और बहुत चोट खा गए। पैर में बहुत असह्य दर्द, कोई सत्तर साल की उम्र है। मैं उन्हें देखने गया। डाक्टरों ने कहा कि तीन महीने तक बिस्तर से हिलना भी नहीं है। और वे मित्र बहुत सक्रिय आदमी हैं। इस सत्तर साल की उम्र में भी भाग-दौड़, चलना-फिरना, काम! एक क्षण खाली, एक क्षण व्यर्थ बैठना मुश्किल है, आराम करना कठिन है। तीन महीने उन्हें एक ही, सीधा पड़े रहना पड़ेगा! मैं उन्हें देखने गया। वे रोने लगे और कहने लगे, इससे तो अच्छा था कि मैं मर जाता। तीन महीने मैं कैसे पार होऊंगा? तीन महीने बरदाश्त करना मुश्किल है। अभी तीन ही दिन बीते हैं और मैं घबड़ा गया हूं। और डाक्टर कहते हैं, तीन महीने हिलना भी नहीं है, करवट भी नहीं लेनी है, सीधे ही पड़े रहें, तो ही पैर ठीक हो सकेंगे। और पैर में बहुत तकलीफ है, उसे सहना मुश्किल है। अगर मैं काम में लग जाऊं तो शायद तकलीफ भूल भी जाए। लेकिन कोई काम नहीं है तो वह तकलीफ ही तकलीफ, तकलीफ ही तकलीफ मालूम हो रही है।
मैंने उनसे कहा, एक छोटा सा प्रयोग करें, तकलीफ के प्रति जागने का प्रयोग करें। आंख बंद कर लें, मैं आपके पास बैठा हूं, और तकलीफ को देखें कि कहां है, पिन प्वाइंट करें कि कहां है। अभी आप कहते हैं पूरे पैर पर तकलीफ है। पूरे पैर पर नहीं हो सकती, कोई खास केंद्र होगा जहां सर्वाधिक होगी। तो सरकें, धीरे-धीरे केंद्र पर आएं। आंख बंद करके देखें कि ठीक वह केंद्र कहां है, जहां तकलीफ है, उस केंद्र पर पहुंचें।
उन्होंने आंख बंद कर ली। और मैंने कहा, हां, खोजें, खोजें, खोजें... । वे आंख बंद करके खोज करने लगे और उस जगह उनका चित्त पहुंच गया जहां तकलीफ थी। और पंद्रह मिनट बीते, बीस मिनट बीते--मैंने उनसे पंद्रह मिनट के लिए कहा था--पैंतीस मिनट बीते, पैंतालीस मिनट बीते... और मैं उनका बाहर बैठा चेहरा देख रहा हूं, उनका चेहरा शांत होता जा रहा है, जैसे तकलीफ विलीन हो गई हो। कोई पैंसठ मिनट पर उन्होंने आंख खोली और कहा, यह तो बड़ी हैरानी की बात
हो गई! जैसे-जैसे मैंने गौर से देखा तो पता चला, पूरे पैर पर तकलीफ भ्रम थी, पूरे पैर पर तकलीफ नहीं थी, वह सिर्फ खयाल था। तकलीफ बहुत छोटी जगह थी, एक प्वाइंट पर थी। धीरे-धीरे मैं उस प्वाइंट पर पहुंच गया। और जब मैं ठीक उस प्वाइंट पर पहुंचा जहां तकलीफ थी, दर्द था, तो मैं एकदम हैरान रह गया, मुझे दिखाई पड़ाः दर्द वहां है और मैं यहां हूं, और दर्द और मेरे बीच लंबा फासला है, मैं दर्द नहीं हूं।
कभी किसी दर्द के प्रति जाग कर देखें और आपको पता चलेगा, आप दर्द नहीं हैं। मैंने उनसे कहा, ये तीन महीने भगवान का आशीर्वाद समझें, यह मौका कभी नहीं मिलेगा, तीन महीने दर्द के प्रति जागें।
कोई तीन महीने बाद मैं उनसे मिलने गया, वे आदमी दूसरे हो गए थे। उन्होंने मुझसे कहा कि सच में ही भगवान की कृपा है, अन्यथा मैं ऐसे ही मर जाता। मैं दर्द के प्रति ही जागने की कोशिश में धीरे-धीरे शरीर के प्रति जाग गया हूं--क्योंकि दर्द शरीर में था, दर्द के प्रति जागा, शरीर के प्रति जागा। और मुझे अदभुत अनुभव हुए इन तीन महीनों में, वह आपसे कहना चाहता हूं।
मैंने कहा, क्या हुआ?
उन्होंने कहा, पहला तो मुझे यह अनुभव हुआ कि मैं शरीर नहीं हूं। और तीन महीने में यह प्रतीति इतनी गहरी और स्पष्ट हो गई कि मैं शरीर नहीं हूं कि अब मुझे मृत्यु का भी कोई भय नहीं है। क्योंकि मैं जानता हूं, शरीर ही मरेगा, मैं नहीं मर सकता हूं।
लेकिन शरीर और हमारे बीच फासला नहीं है, डिस्टेंस नहीं है। हम कभी जागे ही नहीं। ध्यान रहे, जिस चीज के प्रति आप जागेंगे, उसी से फासला हो

जाएगा। जाग ही आप उस चीज के प्रति सकते हैं, जो आप नहीं हैं। क्योंकि आप जागेंगे, हमेशा दूसरी चीज के प्रति जागेंगे। शरीर के प्रति जागेंगे और शरीर अलग हो जाएगा।
एक फकीर था। मुसलमान फकीर था शेख फरीद। शेख फरीद के पास कोई गया और पूछने लगा कि मैंने सुना है कि जीसस को सूली दी गई। और जीसस सूली पर लटकाए जा रहे थे तो भी हंस रहे थे। यह कैसे हो सकता है कि आदमी का शरीर लटकाया जा रहा हो सूली पर और आदमी हंसता हो?
और उस आदमी ने पूछा, मैंने यह भी सुना है कि मंसूर के साथ तो और भी दुर्व्यवहार किया गया। मंसूर के पहले पैर काटे गए, फिर हाथ काटे गए, फिर आंखें फोड़ी गईं और मंसूर हंसता रहा। यह नहीं हो सकता! यह कैसे हो सकता है? जिसके पैर कट गए हों और पैर से लहू गिर रहा हो, जिसके हाथ कट गए हों और जिसकी आंखें फोड़ दी गई हों--वह हंस रहा हो, यह नहीं हो सकता! यह कभी नहीं हो सकता! यह कैसे हो सकता है? मैं पूछने आया हूं।
शेख फरीद हंसने लगा। उसके पास एक नारियल पड़ा था, उसने उठा कर उस आदमी
को दिया और कहा कि जाओ, इस नारियल को फोड़ लाओ। एक बात खयाल रखना, इसकी खोल टूट जाए लेकिन भीतर की गरी न टूटे।
उस आदमी ने कहा, यह नहीं हो सकेगा। नारियल कच्चा है, खोल और गरी जुड़े हुए हैं, यह नहीं हो सकता। मैं खोल तोडूंगा, गरी भी टूट जाएगी।
फरीद ने दूसरा नारियल उठा कर दिया, सूखा नारियल, और कहा, इससे हो सकता है? इसकी गरी को बचा कर ले आना, खोल तोड़ देना।
उस आदमी ने कहा, यह हो सकता है।
फरीद ने पूछा, क्यों?
उस आदमी ने कहा, गरी और खोल के बीच फासला हो गया। हम खोल को तोड़ देंगे, भीतर की गरी साबुत बच सकती है। लेकिन कच्चे नारियल में यह नहीं हो सकता। तो फरीद ने कहा कि बस तू समझा कि नहीं समझा? जीसस और मंसूर जैसे लोग सूखे नारियल हैं, उनके शरीर और उनके बीच फासला है। तुम शरीर को चोट पहुंचाओ, वह चोट शरीर से भीतर नहीं जाती, वह गरी तक नहीं पहुंचती, वह आत्मा तक नहीं पहुंचती। और हम सब कच्चे नारियल हैं। हमारे ऊपर चोट पहुंचती है, वह भीतर तक पहुंच जाती है, क्योंकि बीच के फासले का हमें कोई भी पता नहीं है।
शरीर के प्रति जागरण से, स्वयं और शरीर के बीच डिस्टेंस, फासला पैदा होता है। और वह फासला इतना है कि आप हैरान हो जाएंगे। वह फासला जमीन और आसमान के बीच जो फासला है, इससे ज्यादा है। वह फासला, जमीन और आसमान के बीच जो फासला है, इससे ज्यादा है। यह फासला कभी पूरा किया जा सकता है जमीन और आसमान के बीच का; शरीर और आत्मा के बीच का फासला कभी पूरा नहीं किया जा सकता। वे दिशाएं ही अलग हैं, डायमेंशन अलग हैं। उनके बीच जो फासला है, वह दो बिल्कुल विभिन्न चीजों का फासला है, जिनके बीच कभी भी फासला पूरा नहीं किया जा सकता।
लेकिन हमें तो लगता है कि मैं शरीर हूं--हमने फासला पूरा कर लिया, नींद में यह फासला पूरा हो गया। जैसे एक आदमी पोरबंदर में सोए और सपना देखे कि पोरबंदर में नहीं है, पेकिंग में है। सपने में फासला पूरा हो गया। उसे नींद में पता भी नहीं चल रहा कि वह पोरबंदर में है, वह पेकिंग में समझ रहा है अपने को। सुबह नींद खुले और वह जाग कर हैरान हो जाए और वह कहे कि मैं पेकिंग से वापस कैसे आया? क्योंकि मैं सपने में पेकिंग में था! मैं लौटा कैसे? मैं गया कैसे? तो हम उससे कहेंगे, न तुम गए, न तुम लौटे; तुम्हें सिर्फ खयाल पैदा हुआ कि तुम गए और तुम लौटे। तुम सदा यहीं थे, रात भी तुम यहीं थे, तुम पोरबंदर में ही थे, पेकिंग में तुम गए ही नहीं, पेकिंग तुम पहुंचे ही नहीं, लौटे भी तुम नहीं; पेकिंग में होने का सिर्फ खयाल था, सिर्फ इल्यूजन था।
आदमी की आत्मा शरीर तक कभी पहुंची ही नहीं है और न लौटने का सवाल है, सिर्फ खयाल है कि हम शरीर में हैं, कि मैं शरीर हूं। यह शरीर में होना सिर्फ एक सपना है। शरीर से लौटना नहीं है, सिर्फ जागना है और सपना टूट जाएगा। और पेकिंग से लौटना नहीं पड़ेगा, आप पाएंगे कि आप पोरबंदर में हैं।

आदमी आत्मा में ही है, शरीर वह हो नहीं गया है; बस शरीर में होने का खयाल पैदा हो गया है कि मैं शरीर में हूं। और खयाल अगर पैदा हो जाए, और खयाल अगर मजबूत हो जाए, और अगर हम उसी खयाल को मजबूत करते चले जाएं, तो आत्मा भूल जाती है और शरीर ही रह जाता है।
अमेरिका में सौ वर्ष पहले ऐसा हुआ। लिंकन की शताब्दी मनाई जा रही थी।
एक आदमी की खोज की गई जो लिंकन जैसा दिखाई पड़ता था। बहुत मुश्किल से वह आदमी मिला। और एक आदमी मिल गया जिसकी शक्ल ठीक लिंकन जैसी थी। उसको लिंकन का पार्ट अदा करने के लिए पूरे अमेरिका में घुमाया गया। जगह-जगह लिंकन के जीवन-चरित्र का नाटक हुआ और उस आदमी ने अब्राहम लिंकन का पार्ट किया। एक साल तक वह आदमी एक कोने से दूसरे कोने तक लिंकन का पार्ट करता रहा।
लेकिन साल भर बाद एक बड़ी गड़बड़ हो गई। नाटक खतम हो गया, शताब्दी समाप्त
हो गई, समारोह बंद हो गया और उस आदमी को यह भ्रम पैदा हो गया कि वह अब्राहम लिंकन है। वह भूल गया, पागल हो गया! घर लौट आया, लेकिन अपना नाम बताने लगा अब्राहम लिंकन! पहले तो लोगों ने समझा कि वह मजाक कर रहा है। लेकिन मजाक नहीं थी। उसने जो कपड़े नाटक में पहने थे वह उतारने से इनकार कर दिए। उसने कहा, यही तो मेरे कपड़े हैं। वह उन्हीं कपड़ों को पहन कर सड़कों पर निकलने लगा। वह बिल्कुल लिंकन तो मालूम होता था, कपड़े भी लिंकन के पहनता था, वही लिबास पुराना जो लिंकन का था, उसी तरह छड़ी रखता था, उसी चाल से चलता था। पहले तो लोगों ने समझा कि वह मजाक कर रहा है, लेकिन जब महीने, दो महीने बीत गए और घर के लोग, पत्नी, बेटे, वह किसी को मानता ही नहीं था, वह कहता था, मैं अब्राहम लिंकन हूं।
तब तो परेशानी हुई। उसे बहुत समझाया गया, लेकिन वह मानने को राजी नहीं हुआ। उसे बहुत डराया-धमकाया गया, लेकिन वह मानने को राजी नहीं हुआ। फिर लोगों को शक हुआ कि यह खुद अपने भीतर तो जानता ही होगा कम से कम कि मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। बहुत भीतर तो जानता होगा।

तो एक मशीन होती है लाई-डिटेक्टर, जिस पर झूठ पकड़ी जा सकती है। उस मशीन
पर उसको खड़ा किया गया।
उस मशीन पर खड़ा करके अगर आपसे पूछा जाए, तो जो सत्य है वह आप बोलेंगे
तो आपके हृदय की गति दूसरी रहती है और आप असत्य बोलेंगे तो हृदय की गति में फर्क पड़ जाता है। इसलिए वह मशीन नीचे हृदय की गति आंक लेती है कि फर्क कब पड़ा। जैसे आपसे पूछा कि आप स्त्री हो कि पुरुष? आपने कहा, मैं पुरुष हूं। तो झूठ बोलने का कोई कारण नहीं है, मशीन नीचे आपकी गति अंकित करेगी। आपसे पूछा कि इस समय कितना बजा है घड़ी में? आपने कहा, नौ। तो झूठ बोलने का कोई कारण नहीं है, मशीन नीचे अंकित करेगी। आप से आठ-दस ऐसे प्रश्न पूछे जाएंगे, जिनमें झूठ बोलने का कोई कारण ही नहीं है। फिर आपसे असली सवाल पूछा जाएगा। यही उसके साथ किया गया। दस सवाल पूछे गए, उसने सबका ठीक जवाब दिया। फिर उससे पूछा गया, तुम अब्राहम लिंकन हो? वह घबड़ा गया था, वह परेशान हो गया था इस बात से, लोग पूछ-पूछ कर हैरान कर दिए थे। उसने कहा, मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। लेकिन मशीन ने नीचे से बताया कि यह आदमी झूठ बोल रहा है! वह तो भीतर से जानता था कि मैं अब्राहम लिंकन हूं। मशीन ने बताया कि यह आदमी इस वक्त झूठ बोल रहा है। तब तो बड़ी मुश्किल हो गई।
कैसे यह खयाल इसे पैदा हो गया? यह खयाल पैदा हो सकता है। हमें लगेगा वह आदमी पागल था। लेकिन जो जानते हैं वे कहेंगे, हम सब भी पागल हैं! हम को भी यह खयाल पैदा हो गया है कि हम शरीर हैं।
और ये खयाल बहुत लोगों को पैदा होते हैं। जब स्टैलिन रूस में हुकूमत में था, तो रूस के कई पागलों को यह खयाल था कि वे स्टैलिन हैं। जब चर्चिल हुकूमत में था, तो कई पागलों को इंग्लैंड में खयाल था कि वे चर्चिल हैं। नेहरू जब हुकूमत में थे, तो हिंदुस्तान में कम से कम दस आदमी थे जिनको यह खयाल था कि वे नेहरू हैं। एक ऐसे आदमी से नेहरू का मिलना भी हो गया।
एक पागलखाने में नेहरू गए। और उस पागलखाने में एक पागल था जो ठीक हो गया था। पागलखाने के अधिकारियों ने उसे रोक रखा था कि कल नेहरू आने वाले हैं, उन्हीं के हाथ से इसको मुक्ति दिलवा देंगे तो यह भी खुश होगा, जलसा भी

हो जाएगा। नेहरू उससे मिल कर बहुत खुश हुए और उन्होंने कहा, मैं बहुत खुश हूं कि तुम ठीक हो गए। तुम बिल्कुल ठीक हो गए हो?
उस आदमी ने कहा, मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं। लेकिन महाशय मैं भूल गया पूछना आपसे कि आप हैं कौन?
तो नेहरू ने कहा, मैं? तुम्हें पता नहीं! मैं जवाहरलाल नेहरू हूं।
वह आदमी खूब हंसने लगा और उसने कहा, महाशय, आप भी तीन साल यहां रह जाइए
तो ठीक हो जाएंगे। तीन साल पहले मुझे भी यही खयाल था कि मैं जवाहरलाल नेहरू हूं। लेकिन तीन साल में मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं।
आदमी के भ्रमों की कोई सीमा नहीं है। भ्रम तोड़ने का एक ही उपाय है-- जागरण। और पहला बुनियादी भ्रम है आदमी को कि मैं शरीर हूं। और जब तक यह भ्रम बना हुआ है, तब तक मैं आत्मा हूं यह नहीं जाना जा सकता।
लेकिन कुछ साधु-संत सिखाते हैं कि बैठ कर यह विचार करो कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं शरीर नहीं हूं... । इससे कुछ भी नहीं होगा। क्योंकि जितनी बार आप कहते हो, मैं शरीर नहीं हूं, उतनी बार ही आप यह बात सिद्ध कर रहो हो कि आप जानते हो कि आप शरीर हो। साधु-संत सिखाते हैं कि बैठ कर यह जप करो कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं शरीर नहीं हूं... । लेकिन इस जप का मतलब क्या है? इस जप का मतलब यह है कि आप मानते हो कि आप शरीर हो और उस मान्यता को तोड़ने के लिए उलटी मान्यता पैदा कर रहे हो।
अगर एक पुरुष बैठ कर एक कोने में कहे कि मैं पुरुष हूं, मैं पुरुष हूं,
तो हमें शक होगा कि इस आदमी के दिमाग में कुछ गड़बड़ है। क्योंकि अगर यह पुरुष है, तो दोहराता क्यों है? अगर आपको पता चल गया है कि आप शरीर नहीं हैं, तो आपको दोहराने की जरूरत नहीं है। दोहराने से पता नहीं चल जाएगा, दोहराने से सिर्फ आप एक नया भ्रम पैदा कर रहे हो। पुराना भ्रम कायम है और नया भ्रम पैदा कर रहे हो।
नहीं; दोहराना नहीं है, शरीर के प्रति जागना है। जागने से यह पता चल जाएगा कि मैं शरीर नहीं हूं। इसको दोहराना नहीं पड़ेगा। जैसे मैंने कहा कि एक आदमी पोरबंदर में सोया है और सपना देखता है कि मैं पेकिंग में हूं। और वह सपने में कहे कि नहीं, मैं पेकिंग में नहीं हूं; नहीं, मैं पेकिंग में नहीं हूं; नहीं, मैं पेकिंग में नहीं हूं; तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि यह कहना कि मैं पेकिंग में नहीं हूं, इस बात को मान लेने से शुरू होता है कि मैं पेकिंग में हूं। इसके कहने की कोई जरूरत नहीं है।
हम सिर्फ उसी को निगेट करते हैं, विरोध करते हैं, जिसको हम स्वीकार कर लेते हैं। स्वीकृति को ही विदा करना है, अस्वीकृति नहीं पैदा करनी है। और स्वीकृति कैसे विदा होगी? स्वीकृति जागने से विदा होगी, क्योंकि स्वीकृति निद्रा से पैदा हुई है। हम सोए हुए हैं, इसलिए लगता है कि हम शरीर हैं। हम जाग जाएंगे, लगेगा कि हम शरीर नहीं हैं।
इसलिए पहला स्मरण है शरीर की क्रियाओं के प्रति। दूसरा स्मरण है मन
के विचारों के प्रति। और जैसे ही मन के विचारों के प्रति हम जागेंगे, वैसे ही विचार खो जाएंगे। विचार भी निद्रा से पैदा होते हैं। और जितनी गहरी निद्रा हो, विचार उतने ही सत्य मालूम होते हैं।
इसीलिए तो नींद में सपना सच मालूम होता है। दिन में आपको उतना सच नहीं मालूम होता, क्योंकि दिन में आप थोड़े जाग गए हैं। आप शराब पी लें, और दिन में ही सपना सच मालूम होने लगेगा। क्योंकि शराब में फिर आप सो गए हैं। अभी अमेरिका में दो नई चीजें चलती हैं--लिसर्जिक एसिड और मैस्कलीन।
इन दोनों चीजों को लेने से आदमी दिन में ही जागते ही ऐसे सपने देखने लगता है जिनका कोई हिसाब नहीं। जैसा भांग और गांजे से होता है, वैसे ही ये नये सिंथेटिक ड्रग, नई बनाई गई दवाएं हैं, जिनको लेने से आदमी अदभुत आनंद में पहुंच जाता है, जो देखना चाहे वही दिखाई पड़ने लगता है। स्वर्ग देखिए, नरक देखिए, भगवान देखिए--जो भी देखना चाहें देखिए--बस एक ड्रग ले लीजिए और छह घंटे के लिए खो जाइए। छह घंटे फिर आप दूसरी दुनिया में हैं। प्रत्येक विचार सत्य मालूम होगा।
जिस मात्रा में नींद गहरी होगी, बेहोशी होगी, विचार उतने ही सत्य मालूम होंगे। जिस मात्रा में जागरण होगा, विचार असत्य होते चले जाएंगे।

जागरण पूर्ण होगा, विचार शून्य हो जाएंगे। जागे हुए चित्त में कोई विचार नहीं होता।
तो दूसरी प्रक्रिया है साक्षी कीः मन के प्रति जागना। यह घंटे भर कभी एकांत में बैठ कर करना जरूरी है। और बन सके तो दिन में जब भी खयाल आ जाए, तब मन के विचारों के प्रति होश रखना जरूरी है, अवेयरनेस रखना जरूरी है। एक छह महीने का प्रयोग और चित्त को रूपांतरित कर देता है।
ये दो जागरण आपको करने हैं, तीसरा जागरण अपने आप आता है। जो आदमी शरीर
के प्रति और मन के प्रति जाग जाता है और जिस आदमी को यह अनुभव हो जाता है कि मैं शरीर नहीं हूं और जिसको यह अनुभव हो जाता है कि मन के विचार शांत हो गए, उसको तीसरा जागरण अपने आप आता है--वह है आत्म-जागरण। शरीर के प्रति जागना पड़ता है, मन के प्रति जागना पड़ता है; आत्म-जागरण अपने आप आता है। दो जागरण हमें करने पड़ते हैं, तीसरा जागरण अपने से उपलब्ध होता है। ये दो जागरण जहां पूरे हो जाते हैं, तीसरा जागरण प्रकट हो जाता है।
जैसे कोई आदमी छत पर खड़ा हो और कूदना चाहे छत से, तो कूदेगा। कूदने के बाद अगर वह हम से पूछे कि अब मैं जमीन पर पहुंचने के लिए और क्या करूं?
तो हम उससे कहेंगे, अब तुम्हें कुछ भी नहीं करना, अब जमीन तुम्हें खींच लेगी। तुम कूद गए, इतना काफी है। अब बाकी काम जमीन करेगी। जमीन में ग्रेविटेशन है, वह तुम्हें खींच लेगा। छत से कूदो मत, तो जमीन का ग्रेविटेशन काम नहीं करेगा, गुरुत्वाकर्षण काम नहीं करेगा। छत से कूद जाओ, फिर तुम्हें कुछ भी नहीं करना है, फिर जमीन खींच लेगी।
हम शरीर और मन पर रुके हुए हैं, अटके हुए हैं। वहां से हम कूद जाएं, फिर आत्मा का ग्रेविटेशन है, आत्मा की कशिश है, आत्मा का गुरुत्वाकर्षण है, वह जमीन के गुरुत्वाकर्षण से भी ज्यादा है। बस एक बार हम कूद जाएं शरीर की छत से, फिर आत्मा खींच लेती है।
एक बहुत प्राचीन इजिप्त की किताब में एक वचन है कि तुम एक कदम चलो परमात्मा की तरफ और परमात्मा तुम्हारी तरफ हजार कदम चलता है। एक कदम तुम उठाओ, हजार कदम परमात्मा की शक्ति उठाती है। उसे उठाना नहीं पड़ता, बस तुम्हारा एक कदम छलांग बन जाती है और फिर खींच लिया जाता है आदमी।
शरीर और मन से कूद जाना है, फिर हम वहां पहुंच जाते हैं जहां आत्मा है।
वह तीसरा जागरण अपने आप आता है। दो साक्षीभाव स्वयं साधने हैं, तीसरा अपने आप आता है। यह कहना भी शायद गलत है कि अपने आप आता है। वह तीसरा साक्षीभाव मौजूद है हमेशा से, उसका हमें पता नहीं चल रहा, क्योंकि हम दो तलों पर नींद में खो गए हैं। वह सदा से मौजूद है, वह है! हम यहां से जागे और वह दिखाई पड़ जाएगा।
जैसे कि हम अभी आंख बंद करके बैठ जाएं, तो सूरज है बाहर, लेकिन हमें पता नहीं चलेगा। हम आंख खोलें और हम कहेंगे सूरज आ गया। सूरज आ नहीं गया, सूरज तब भी था जब हम आंख बंद किए बैठे थे। लेकिन आंख बंद हो तो सूरज दिखाई कैसे पड़े?
हम शरीर की तरफ खोए हुए हैं, इसलिए वह हमें नहीं दिखाई पड़ता जो शरीर के पीछे है। हम शरीर से उठ जाएं और वह हमें दिखाई पड़ जाएगा जो पीछे है।
जिस दिन बुद्ध को सत्य की उपलब्धि हुई, लोगों ने उनसे पूछा कि तुम्हें क्या मिल गया है? तुम क्यों नाचते हो? क्यों इतने खुश हो रहे हो? तुम्हें मिला क्या है?
बुद्ध ने कहा, मिला कुछ नहीं; जो सदा से मिला हुआ था, उसका ही पता चल गया है। जो सदा से ही मिला हुआ था, उसका ही पता चल गया है।
बुद्ध ने कहा, मिला कुछ भी नहीं; कुछ खो जरूर गया है--नींद खो गई है, अज्ञान खो गया है। ज्ञान मिला है, ऐसा मैं नहीं कहूंगा। क्योंकि ज्ञान था! मैं नींद में था, इसलिए उसका पता नहीं चलता था।
सत्य है हमारे पास, उसे खोजने कहीं जाना नहीं है, सिर्फ जागना है।
एक छोटी सी कहानी, और अपनी बात मैं पूरी कर दूंगा।
एक छोटी सी पहाड़ी के पास एक संन्यासी खड़ा हुआ है। और तीन व्यक्ति गांव
के पहाड़ी के पास घूमते हुए निकल रहे हैं। उन तीनों को खयाल उठा कि सूरज की चमकती रोशनी में यह संन्यासी वहां क्या कर रहा है? एक ने कहा कि कभी-कभी

ऐसा होता है, उसकी गाय खो जाती है। और वह अपनी गाय को खोजने पहाड़ पर जाता है, वहां से ऊंचाई पर खड़े होकर देखता है कि गाय कहां है।
लेकिन दूसरे व्यक्ति ने कहा, मित्र, जो आदमी कुछ खोजता है वह आंख खोल
कर खड़ा होता है। वह संन्यासी आंख बंद किए हुए खड़ा है, वह खोज नहीं रहा है। दूसरे मित्र ने कहा कि मैं समझता हूं, कभी-कभी उसके साथी कुछ और लोग भी घूमने आते हैं। वे पीछे रह जाते हैं तो वह खड़े होकर उनकी प्रतीक्षा करता है, जब वे आ जाते हैं तब पहाड़ से नीचे उतर आता है।
लेकिन तीसरे मित्र ने कहा, यह भी ठीक मालूम नहीं पड़ता; क्योंकि जो आदमी किसी की प्रतीक्षा करता है वह कभी-कभी पीछे लौट कर भी देखता है। वह पीछे लौट कर ही नहीं देख रहा, वह एक ही तरफ सिर किए हुए है। तो तीसरे ने कहा, मैं यह नहीं मानता कि वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा है, न मैं यह मानता हूं कि वह गाय की खोज कर रहा है। मेरी समझ है कि वह परमात्मा का स्मरण कर रहा है।
विवाद तेज हो गया और उन तीनों ने कहा, अब इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं
कि हम चलें और उससे ही पूछ लें कि तुम क्या कर रहे हो?
वे तीनों पहाड़ चढ़ कर गए। और पहले आदमी ने जाकर उस संन्यासी को पूछा कि भिक्षुजी, क्या आप अपनी गाय खोज रहे हैं?
उस भिक्षु ने आंख खोली और कहा, गाय? मेरा कुछ भी नहीं है, तो मैं खोजूंगा क्या! मैं खाली हाथ आया और खाली हाथ चला जाऊंगा। और मैं जानता हूं कि मेरे हाथ अभी भी खाली हैं। मैं उस भ्रम में नहीं पड़ता कि मेरा कुछ है। इसलिए खोजने का सवाल ही नहीं। अपने को ही खोज लूं वही बहुत, बस वही मैं हूं। अपने को ही नहीं खोज पाया, गाय को क्या खोजूंगा? समय खराब करने को मेरे पास नहीं है। मैं कुछ खोज नहीं रहा।
वह आदमी हार कर पीछे हट गया। दूसरे आदमी ने कहा, तब तो निश्चय ही कोई मित्र पीछे छूट गया, आप उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं?
उस संन्यासी ने कहा, भाई, मेरा कोई शत्रु नहीं, इसलिए मित्र का भी कोई सवाल नहीं! जिनके शत्रु होते हैं, उनके ही मित्र होते हैं! मेरा न कोई शत्रु है, न मेरा कोई मित्र है! मैं किसी की प्रतीक्षा नहीं कर रहा। प्रतीक्षा किसकी करनी है? और कितनी ही प्रतीक्षा करो, कभी कोई मिल सकता है? अपने से ही मिलना मुश्किल है, दूसरे से मिलना कहां संभव है! मैं किसी की प्रतीक्षा नहीं कर रहा हूं।
वह आदमी भी हार गया। तीसरे आदमी ने कहा, तब तो निश्चित ही जीत मेरी है। मैं आपसे पूछता हूं, क्या आप भगवान का स्मरण कर रहे हैं?
वह फकीर कहने लगा, भगवान? भगवान का मुझे कुछ पता नहीं। जिसका पता नहीं उसका स्मरण कैसे करूं? और पता चल जाएगा तो फिर स्मरण क्यों करूंगा? पता नहीं है तब भी स्मरण नहीं किया जा सकता और पता हो जाए तब स्मरण की जरूरत नहीं रह जाती। मैं किसी का स्मरण नहीं कर रहा हूं।
तो उन तीनों ने पूछा कि फिर महाशय, आप कर क्या रहे हैं यहां खड़े होकर?
तो उस भिक्षु ने बड़ी अदभुत बात कही। उसने कहा, मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं; मैं सिर्फ जागा हुआ खड़ा हूं। उस भिक्षु ने कहा, मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं; मैं सिर्फ जागा हुआ खड़ा हूं। जस्ट स्टैंडिंग इन अवेयरनेस। बस मैं होश में खड़ा हुआ हूं। मैं कुछ कर ही नहीं रहा, बस मैं साक्षी की तरह खड़ा हुआ हूं। आकाश का साक्षी हूं, सूरज का साक्षी हूं, वृक्षों का साक्षी हूं, तुम्हारा साक्षी हूं, अपना साक्षी हूं--बस साक्षी होकर खड़ा हूं।
लेकिन वे मित्र पूछने लगे कि किसलिए साक्षी होकर खड़े हो?
तो उस भिक्षु ने कहा, यह तुम साक्षी होकर खड़े हो जाओ तो ही जान सकते हो। यह तुम भी इसी तरह जब किसी दिन खड़े होओगे तो जान सकोगे। क्योंकि, उस भिक्षु ने कहा, जब तक मैं सोया था, मैंने सब खोया; और जब से मैं जागना शुरू हो गया हूं, मैंने सब पा लिया। सोया हुआ व्यक्ति सब खो देता है--जीवन, सत्य, अमृत, सब! जागा हुआ व्यक्ति सब पा लेता है--जीवन, आत्मा, सत्य, अमृत। अगर पाना है कुछ तो जागना जरूरी है। अगर खोना है तो सोना पर्याप्त है।
हम सब खो रहे हैं, क्योंकि सोए हैं। हम सब भी पा सकते हैं, अगर हम जाग जाएं। और पाने की जो अंतिम अनुभूति है उसका नाम ही परमात्मा है। उसके आगे

पाने को कुछ शेष नहीं रह जाता। उसे पाकर सब पाने की दौड़ समाप्त हो जाती है। क्योंकि वही जीवन है, वही आनंद है, वही अमृत है।
इस अमृत की दिशा में, इस जीवन की दिशा में, इन तीन सूत्रों में मैंने कुछ बातें कही हैं। मेरी बातें मुझे समझ लेने से कुछ परिणाम नहीं लाने वाली हैं। वह तो जो उस भिक्षु ने कहा, आप भी जाग कर खड़े हो जाएं, तो कुछ हो सकता है।
थोड़ी कोशिश करें। सोने की तो हम चौबीस घंटे कोशिश करते हैं, कभी घड़ी,
दो घड़ी जागने की कोशिश करें। और इतना मैं कहता हूं कि जीवन के अंत में वही हाथ आएगा जो जागने में पाया है, जो सोने में कमाया है वह सब व्यर्थ हो जाता है।
मेरी बातों को इतनी शांति और इतने प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।